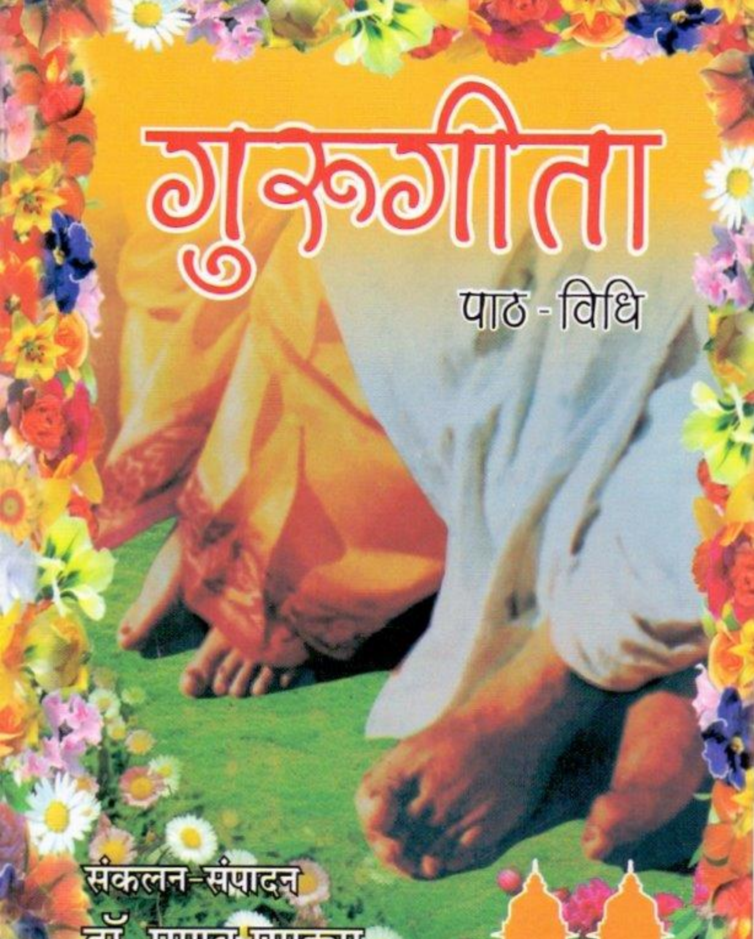

गुरुगीता
पाठ - विधि
संकलन-संपादन

गुरुगीता

(पाठ-विधि)

|||

संकलन-संपादन

डॉ० प्रणव पण्ड्या

ब्रह्मवर्चस

|||

प्रकाशक

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (TMD)

श्रीरामपुरम्, गायत्रीनगर-शांतिकुंज, हरिद्वार

(उत्तराखण्ड) 249411

पुनरावृत्ति सन् 2014 मूल्य- 10/-

गुरुगीता

(पाठ-विधि)

संकलन-संपादन
डॉ० प्रणव पण्ड्या
ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक
श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (TMD)
श्रीरामपुरम्-गायत्रीनगर, शांतिकुंज, हरिद्वार
(उत्तराखण्ड) पिन-249411

गायत्रीतीर्थ-शांतिकुंज, हरिद्वार
(उत्तराखण्ड) 249411

Ph.No.Off.- 01334-260602, 260403, 261328 Fax-260866
Email:shantikunj@awgp.org www.awgp.org

विषय सूची

******

आत्मनिवेदन

गुरुगीता साधक संजीवनी है। आदिमाता पार्वती की जिज्ञासा पर भगवान् शिव प्रसन्न होकर उन्हें उपदेश देते हैं। इस पूरे वार्त्तालाप में जो स्कन्द पुराण के उत्तराखण्ड में लगभग पौने दो सौ श्लोकों में आया है, सद्गुरु की महिमा का वर्णन है। गुरु-शिष्य संबंध इस धरती का सर्वाधिक पावन और आत्मीय संबंध है। गुरुगीता एक प्रकार से हर शिष्य के लिए साधना का एक श्रेष्ठ माध्यम है। इससे गुरुकृपा सतत–अनवरत प्राप्त की जा सकती है।

गुरुगीता में सभी कुछ वह है, जो पुराण में श्री वेदव्यास जी ने लिखा है। आदिशक्ति द्वारा शिष्य भाव से जिज्ञासा व्यक्त की गयी। जगन्नियन्ता तंत्राधिपति देवों के देव भगवान् महाकाल गुरु रूप में उसका समाधान करते हैं। इसी तरह शक्ति स्वरूपा माता भगवती देवी एवं परम पूज्य गुरुदेव का जीवन रहा है, जिनका सान्निध्य हम सभी को मिला है।

गुरु-शिष्य परम्परा का एक श्रेष्ठतम उदाहरण इस ऋषि युग्म ने प्रस्तुत किया। लाखों-करोड़ों शिष्यों पर निरन्तर अनुकम्पा बरसाने वाले प्रखर प्रज्ञारूपी हमारे सद्‌गुरु एवं सजल श्रद्धारूपी हमारी मातृशक्ति के त्याग-तपस्यामय जीवन को समर्पित है—यह संकलन। इसका नियमित पाठ निश्चित ही जन-जन का कल्याण करेगा, श्रद्धा-संवर्धन करेगा, गुरुसत्ता से तादात्म्य स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त करेगा, इसी आशा और विश्वास के साथ।

—डॉ० प्रणव पण्ड्या

गुरुगीता-पाठ विधि

साधक स्नान आदि से निवृत्त होकर पवित्र स्थान व स्वच्छ आसन पर बैठकर षट्कर्म के पश्चात् दी गई विधि अनुसार संकल्प, विनियोग, न्यास के साथ गायत्री जप व गुरुगीता का पाठ करे।

॥ संकल्प ॥

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्री ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे, वैवस्वतमन्वन्तरे, भूर्लोके, जम्बूद्वीपे, भारतवर्षे, भरतखण्डे, आर्यावर्त्तान्तर्गते...................... क्षेत्रे मासानां मासोत्तमेमासे .... मासे .... पक्षे .... तिथौ .... वासरे ....गोत्रोत्पन्नः .... नामाऽहं ममात्मनः जन्मजन्मान्तरकृत सर्वपापक्षयपूर्वकम् श्रीसद्गुरु अनुग्रहतो ग्रहकृतराजकृत - सर्वविधपीडानिवृत्तिपूर्वकम् नैरुज्यदीर्घायुः पुष्टिधनधान्य - समृद्ध्यर्थं

श्रीसद्गुरुकृपाप्रसादेन सर्वापन्निवृत्तिसर्वाभीष्ट-फलावाप्तिधर्मार्थकाममोक्ष चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिद्वारा श्री सद्गुरु भक्तिपूर्वकम् ब्रह्मविद्याप्राप्तिकामः श्रीसद्गुरुदेवता प्रीत्यर्थं श्री गुरुगीता विनियोग—न्यासध्यानपूर्वकं च 'ऋषयः ऊचुः- गुह्यात गुह्यतरा' इत्याद्यारभ्य 'वन्दे महाभयहरं गुरुराज मंत्रम्' इत्यन्तं श्रीगुरुगीतापाठं तदन्ते गायत्रीमहामंत्र जपं श्रीगुरुस्तुति पठनं च करिष्ये।

साधक गुरुगीता पाठ के साथ गायत्री महामंत्र का एक माला सविधि जप करे।

॥ गायत्री जप ॥

विनियोग

ॐ कारस्य परब्रह्म ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, तिसृणां महाव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्या देवताः तत्सवितुरिति विश्वामित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः।

न्यास-करन्यास

ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः।

(दोनों हाथों की तर्जनी अँगुलियों से दोनों अँगूठों का स्पर्श)।

ॐ भूः तर्जनीभ्यां नमः।

(दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों तर्जनी अँगुलियों का स्पर्श)।

ॐ भुवः मध्यमाभ्यां नमः।

(अँगूठों से मध्यमा अँगुलियों का स्पर्श)।

ॐ स्वः अनामिकाभ्यां नमः।

(अनामिका अँगुलियों का स्पर्श)।

ॐ भूर्भुवः कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

(कनिष्ठिका अँगुलियों का स्पर्श)।

ॐ भूर्भुवः स्वः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

(हथेलियों और उनके पृष्ठभागों का परस्पर स्पर्श)।

हृदयादिन्यास

इसमें दाहिने हाथ की पाँचों अँगुलियों से 'हृदय' आदि अंगों का स्पर्श किया जाता है।

ॐ हृदयाय नमः। (दाहिने हाथ की पाँचों अंगुलियों से हृदय का स्पर्श)।

ॐ भूः शिरसे स्वाहा। (सिर का स्पर्श)।

ॐ भुवः शिखायै वषट्। (शिखा का स्पर्श)।

ॐ स्वः कवचाय हुम्। (दाहिने हाथ की अँगुलियों से बायें कंधे का और बायें हाथ की अँगुलियों से दाहिने कंधे का एक साथ स्पर्श)।

ॐ भूर्भुवः नेत्राभ्यां वौषट्। (दाहिने हाथ की अँगुलियों के अग्रभाग से दोनों नेत्रों और ललाट के मध्यभाग का स्पर्श)।

ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट्। (यह वाक्य पढ़कर दाहिने हाथ को सिर के ऊपर से बायीं ओर से पीछे की ओर ले जाकर दाहिनी ओर से आगे की ओर ले आयें और

तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियों से बायें हाथ की हथेली पर ताली बजायें)।

ध्यानम्

ॐ आयातु वरदे देवि! त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि।
गायत्रिच्छन्दसां मातः ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते॥

मंत्र जप

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

हाथ जोड़कर आद्यशक्ति का ध्यान करते हुए निम्न मंत्र के साथ प्रार्थना करें।

प्रार्थना

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत् कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि! त्वत् प्रसादान्महेश्वरि॥

॥ श्रीसद्गुरु शरणम् ॥

॥ श्रीगुरुगीता न्यासः ॥

विनियोग

ॐ अस्य श्री गुरुगीतास्तोत्रमंत्रस्य भगवान् सदाशिवऋषिः। नानाविधानि छन्दासि। श्री सद्गुरुदेव परमात्मा देवता। हं बीजं। सः शक्तिः। क्रों कीलकं। श्री सद्गुरुदेव कृपाप्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः।

करन्यास

सर्वश्रुतिशिरोरत्नविराजितपदाम्बुजः।
वेदान्ताम्बुजसूर्यो यस्तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
अंगुष्ठाभ्यां नमः।

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम्।
नादबिन्दु कलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
तर्जनीभ्यां नमः।

स्थावरं जङ्गमं चैव तथा चैव चराचरम्।
व्याप्तं येन जगत्सर्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
मध्यमाभ्यां नमः ।

ज्ञानशक्तिसमारूढस्तत्त्वमालाविभूषितः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदाताय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
अनामिकाभ्यां नमः ।

अनेकजन्मसंप्राप्त–सर्वकर्मविदाहिने ।
स्वात्मज्ञानप्रभावेण तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।

मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुस्त्री जगद्गुरुः ।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिन्यास

सर्वश्रुतिशिरोरत्नविराजितपदाम्बुजः।
वेदान्ताम्बुजसूर्यो यस्तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ हृदयाय नमः।
चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम्।
नादबिन्दुकलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ शिरसे स्वाहा।
स्थावरं जङ्गमं चैव तथा चैव चराचरम्।
व्याप्तं येन जगत्सर्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ शिखायै वषट्।
ज्ञानशक्तिसमारूढस्तत्त्वमालाविभूषितः।
भुक्तिमुक्तिप्रदाताय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ कवचाय हुम्।
अनेकजन्मसंप्राप्त - सर्वकर्मविदाहिने।
स्वात्मज्ञानप्रभावेण तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ नेत्रत्रयाय वौषट्।
मन्त्राथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुस्त्री जगद्गुरुः।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ अस्त्राय फट्।

(साधक हाथ जोड़कर परमात्मस्वरूप गुरुसत्ता का ध्यान करे।)

॥ ध्यानम् ॥

योगपूर्णं तपोनिष्ठं वेदमूर्तिं यशस्विनम्।
गौरवर्णं गुरुश्रेष्ठं भगवत्या सुशोभितम्॥
कारुण्यामृतंसागरं शिष्यभक्तादिसेवितम्।
श्रीरामं सद्गुरुं ध्यायेत् तमाचार्यवरं प्रभुम्॥

भावार्थ - गौरवर्णीय, प्रेम की साकार मूर्ति परम पूज्य गुरुदेव वन्दनीया माताजी (माता भगवती देवी) के साथ सुशोभित हैं। गुरुदेव योग की सभी साधनाओं में पूर्ण, वेद की साकार मूर्ति, तपोनिष्ठ व तेजस्वी हैं। शिष्य और भक्तों से सेवित गुरुदेव करुणा के अमृत सागर हैं। उन आचार्य श्रेष्ठ श्रीराम का, अपने गुरुदेव का साधक ध्यान करें।

साधक शान्त, एकाग्र भाव से स्थिरासन में मंत्रार्थ को हृदयंगम करते हुए पाठ करे।

॥ श्री सद्गुरु चरण कमलेभ्यो नमः ॥

॥ अथ श्रीगुरुगीता ॥

ऋषयः ऊचुः

गुह्यात् गुह्यतरा विद्या गुरुगीता विशेषतः।
ब्रूहि नः सूत कृपया शृणुमस्त्वत्प्रसादतः॥

ऋषिगण बोले–हे सूत जी! हमें विशेष रूप से गूढ़तम गुरुगीता के बारे में कहो। आपकी कृपा से हम सभी सुनेंगें।

सूत उवाच

कैलाशशिखरे रम्ये भक्तिसन्धाननायकम्।
प्रणम्य पार्वती भक्त्या शंकरं पर्यपृच्छत॥ १ ॥

सूतजी बोले– एक बार रमणीय कैलाश पर्वत पर पार्वती जी ने भक्तों के कल्याण करने वाले शिव जी को प्रणाम करने के पश्चात् पूछा॥ १ ॥

श्री देव्युवाच

ॐ नमो देवदेवेश परात्पर जगद्गुरो।
सदाशिव महादेव गुरुदीक्षां प्रदेहि मे॥ २ ॥

देवी बोलीं– हे देवाधिदेव! हे परात्पर जगद्गुरु! हे सदाशिव! हे महादेव! कृपा करके मुझे गुरुदीक्षा प्रदान कीजिये॥ २ ॥

केन मार्गेण भोः स्वामिन् देही ब्रह्ममयो भवेत्।
त्वं कृपां कुरु मे स्वामिन् नमामि चरणौ तव॥ ३॥

हे स्वामी! आप मुझे बताएँ कि किस मार्ग से जीव ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त करता है। हे स्वामी! आप मुझ पर कृपा करें। मैं आपके चरणों में प्रणाम करती हूँ॥ ३॥

ईश्वर उवाच

मम रूपासि देवित्वं त्वत्प्रीत्यर्थं वदाम्यहम्।
लोकोपकारकः प्रश्नो न केनाऽपि कृतः पुरा॥ ४॥

हे देवी! आप तो मेरा अपना स्वरूप हैं। आपका यह प्रश्न बड़ा ही लोकहितकारी है। ऐसा प्रश्न पहले कभी किसी ने नहीं पूछा। आपकी प्रीति के कारण इसके उत्तर को मैं अवश्य कहूँगा॥ ४॥

दुर्लभं त्रिषु लोकेषु तदशृणुष्व वदाम्यहम्।
गुरुं विना ब्रह्म नान्यत् सत्यं सत्यं वरानने॥ ५॥

हे महादेवी! यह उत्तर भी तीनों लोकों में अत्यन्त दुर्लभ है। परन्तु इसे मैं कहूँगा। आप सुनें, गुरु से अलग ब्रह्म नहीं है अर्थात् गुरु ही ब्रह्म है। हे श्रेष्ठ मुखमण्डल वाली! यह सत्य है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है॥ ५॥

वेदशास्त्रपुराणानि इतिहासादिकानि च।
मंत्रयंत्रादि विद्याश्च स्मृतिरुच्चाटनादिकम्॥ ६॥

शैवशाक्तागमादीनि अन्यानि विविधानि च।
अपभ्रंशकराणीह जीवानां भ्रान्तचेतसाम्॥ ७॥

वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास, स्मृति, मंत्र, यंत्र, उच्चाटन आदि विद्याएँ, शैव-शाक्त, आगम आदि विविध विद्याएँ केवल जीव के चित्त को भ्रमित करने वाली सिद्ध होती है॥ ६/७॥

यज्ञो व्रतं तपो दानं जपस्तीर्थं तथैव च।
गुरुतत्त्वमविज्ञाय मूढस्ते चरते जनः॥ ८॥

यज्ञ, व्रत, तप, दान, जप और तीर्थ आदि सारी प्रक्रियाओं को करने वाले लोग भी गुरुतत्त्व के बोध के अभाव में मूढ़ की तरह आचरण करते हैं॥ ८॥

गुरुर्बुद्ध्यात्मनो नान्यत् सत्यं सत्यं न संशयः।
तल्लाभार्थं प्रयत्नस्तु कर्तव्यो हि मनीषिभिः॥ ९॥

प्रबुद्ध आत्मा एवं सद्गुरु एक ही है, भिन्न नहीं है। यह सत्य है- सत्य है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

इसलिए मननशील मनीषियों को इसकी प्राप्ति हेतु ही सभी श्रेष्ठ कर्तव्य कर्म करना चाहिए॥ ९॥

गूढ़विद्या जगन्माया देहेचाज्ञान सम्भवा।
उदयो यत्प्रकाशेन गुरुशब्देन कथ्यते॥ १०॥

माया से आवृत्त जगत् और अज्ञान से उत्पन्न शरीर के लिए यह गूढ़विद्या है। जिसके प्रकाशित होने से सत्यज्ञान का उदय होता है। इसी तत्त्व को 'गुरु' संज्ञा दी गयी है॥ १०॥

सर्वपापविशुद्धात्मा श्रीगुरोः पादसेवनात्।
देहीब्रह्मभवेद् यस्मात् त्वत् कृपार्थं वदामि ते॥ ११॥

सद्गुरु के चरणों की सेवा से साधक सारे पापों से मुक्त होकर विशुद्धात्मा हो जाता है। (भगवान् शिव माता पार्वती से कहते हैं, यही नहीं देवि!) मैं तुम्हें कृपापूर्वक बता रहा हूँ, देहधारी जीव ब्रह्मभाव को उपलब्ध हो जाता है॥ ११॥

गुरुपादाम्बुजं स्मृत्वा जलं शिरसि धारयेत्।
सर्वतीर्थावगाहस्य सम्प्राप्नोति फलं नरः॥ १२॥

सद्गुरु के चरणों का स्मरण करते हुए जल को सिर पर डालने से मनुष्य को सभी तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त होता है॥ १२ ॥

शोषकं पापपङ्कस्य दीपनं ज्ञानतेजसाम्।
गुरुपादोदकं सम्यक् संसारार्णवतारकम्॥ १३ ॥

श्रीगुरु के चरणों का जल पाप रूपी कीचड़ को समाप्त करने वाला तथा ज्ञान और तेज रूपी दीपक के प्रकाश के द्वारा संसार रूपी सागर से पार कराने वाला है ॥ १३ ॥

अज्ञानमूलहरणं जन्मकर्मनिवारणम्।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं गुरुपादोदकं पिबेत्॥ १४ ॥

श्रीगुरु का चरणोदक अज्ञान की जड़ उखाड़ने वाला तथा जन्म एवं कर्मों को समाप्त करने वाला होता है। ज्ञान–वैराग्य की प्राप्ति के लिए उस श्रीगुरु के चरणजल का पान करना चाहिए॥ १४ ॥

गुरोः पादोदकं पीत्वा गुरोरुच्छिष्टभोजनम्।
गुरुमूर्तेः सदा ध्यानं गुरुमन्त्रं सदा जपेत्॥ १५ ॥

श्रीगुरु का चरणोदक पीकर गुरु को पहले भोज्य पदार्थों को समर्पित कर बाद में स्वयं उन्हें प्रसाद रूप में ग्रहण करे तथा

श्रीगुरु के द्वारा दिये गये मंत्र के जप के साथ-साथ गुरु के स्वरूप का ध्यान करे॥ १५ ॥

काशीक्षेत्रं तन्निवासो जाह्नवी चरणोदकम्।
गुरुःविश्वेश्वरः साक्षात् तारकं ब्रह्मनिश्चितम्॥ १६ ॥

गुरु का निवास ही मुक्तिदायिनी काशी है। उनका चरणोदक ही इस काशीधाम को आध्यात्मिक ऊर्जा से भरने वाला गंगाजल है। गुरुदेव ही भगवान् विश्वनाथ हैं। वही साक्षात् तारक ब्रह्म हैं॥ १६ ॥

गुरोः पादोदकं यत्तु गयाऽसौ सोऽक्षयोवटः।
तीर्थराज प्रयागश्च गुरुमूर्त्यै नमोनमः॥ १७॥

गुरुदेव का चरणोदक गया तीर्थ है। वह स्वयं अक्षयवट एवं तीर्थराज प्रयाग है। ऐसे सद्गुरु भगवान् को बारम्बार नमस्कार है॥१७॥

गुरुमूर्तिं स्मरेन्नित्यं गुरुनाम सदा जपेत्।
गुरोराज्ञां प्रकुर्वीत गुरोरन्यत्र भावयेत्॥ १८॥

सद्गुरु कृपा से अपने जीवन में भौतिक, आध्यात्मिक, लौकिक-अलौकिक समस्त विभूतियों को पाने की चाहत रखने वाले साधक को सदा ही गुरुदेव की छवि का स्मरण

करना चाहिए। उनके नाम का प्रति पल, प्रति क्षण जप करना चाहिए। साथ ही गुरु आज्ञा का जीवन की सभी विपरीतताओं के बावजूद सम्पूर्ण निष्ठा से पालन करना चाहिए। अपने जीवन में कल्याण कामना करने वाले साधक को गुरुदेव के अतिरिक्त अन्य कोई भावना नहीं रखनी चाहिए॥ १८॥

गुरुवक्त्रस्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत्प्रसादतः।
गुरोर्ध्यानं सदा कुर्यात् कुलस्त्री स्वपतेर्यथा॥ १९॥

गुरु के मुख में ब्रह्मा का वास है। इस कारण उनके मुख से बोले हुए शब्द ब्रह्म वाक्य ही हैं। गुरु कृपा प्रसाद से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है। परम पतिव्रता स्त्री जिस तरह से सदा ही अपने पति का ध्यान करती है, ठीक उसी तरह अध्यात्म तत्त्व के अभीप्सु साधक को अपने गुरु का ध्यान करना चाहिए॥ १९॥

स्वाश्रयं च स्वजातिं च स्वकीर्तिं पुष्टिवर्धनम्।
एतत्सर्वं परित्यज्य गुरोर्न्यन्न भावयेत्॥ २०॥

अपने स्थान, अपनी जाति, अपनी कीर्ति तथा अपनी उन्नति के विचार को त्याग कर श्रीगुरु के अलावा अन्य किसी का भी विचार नहीं करना चाहिए॥ २०॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां सुलभं परमं पदम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरोराराधनं कुरु ॥ २१ ॥

शिष्य को यह तथ्य भलीभाँति आत्मसात् कर लेना चाहिए कि सद्गुरु का अनन्य चिंतन मेरा ही (भगवान् सदाशिव) चिंतन है। इससे परमपद की प्राप्ति सहज सुलभ होती है। इसलिए कल्याण कामी साधक को प्रयत्नपूर्वक गुरु आराधना करनी चाहिए॥ २१ ॥

त्रैलोक्ये स्फुटवक्तारो देवाद्यसुरपन्नगाः।
गुरुवक्त्रस्थिता विद्या गुरुभक्त्या तु लभ्यते॥ २२ ॥

तीनों लोकों के देव-असुर एवं नाग आदि सभी इस सत्य को बड़ी स्पष्ट रीति से बताते हैं कि ब्रह्म विद्या गुरुमुख में ही स्थित है। गुरुभक्ति से ही इसे प्राप्त किया जा सकता है॥ २२ ॥

गुकारस्त्वन्धकारश्च रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः ॥ २३ ॥

'गुरु' शब्द में 'गु' अक्षर अन्धकार का वाचक है और 'रु' का अर्थ है प्रकाश। इस तरह गुरु ही अज्ञान का नाश करने वाले ब्रह्म है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है॥ २३ ॥

गुकारः प्रथमो वर्णो मायादिगुणभासकः।
रुकारो द्वितीयो ब्रह्म मायाभ्रान्ति विनाशनम्॥ २४॥

शास्त्र वचनों से यह प्रमाणित होता है कि 'गुरु' शब्द के प्रथम वर्ण 'गु' से माया आदि गुण प्रकट होते हैं और इसके द्वितीय वर्ण 'रु' से ब्रह्म प्रकाशित होता है। जो माया की भ्रान्ति को विनष्ट करता है॥ २४॥

एवं गुरुपदं श्रेष्ठं देवानामपि दुर्लभं।
हाहाहूहू गणैश्चैव गन्धर्वैश्च प्रपूज्यते॥ २५॥

इसलिए गुरुपद सर्वश्रेष्ठ है। यह देवों के लिए भी दुर्लभ है। हाहाहूहू गण और गन्धर्व आदि भी इसकी पूजा करते हैं॥ २५॥

ध्रुवं तेषां च सर्वेषां नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्।
आसनं शयनं वस्त्रं भूषणं वाहनादिकम्॥ २६॥
साधकेन प्रदातव्यं गुरुसन्तोषकारकम्।
गुरोराराधनं कार्यं स्वजीवित्वं निवेदयेत्॥ २७॥

हे श्रेष्ठमुख वाली देवी पार्वती! शिष्य को यह सत्य भली भाँति जान लेना चाहिए कि यह ध्रुव (अटल) है कि गुरु से श्रेष्ठ अन्य कोई भी तत्त्व नहीं है। ऐसे लोक कल्याण

में निरत परम कृपालु गुरु के कार्य के लिए आसन, वस्त्र, आभूषण, वाहन आदि देते रहना शिष्य का कर्त्तव्य है। साधक द्वारा इस तरह लोक कल्याणकारी कार्यों में सहयोग से सद्गुरु को सन्तोष होता है। भगवान् शिव का कथन है कि गुरु के कार्य के लिए साधक को अपनी जीविका को भी अर्पण करना चाहिए॥ २६-२७॥

कर्मणा मनसा वाचा नित्यमाराधयेद् गुरुम्।
दीर्घदण्डम् नमस्कृत्य निर्लज्जोगुरुसन्निधौ॥ २८॥

हर काल में कर्म से, मन से तथा वाणी से गुरु की आराधना करनी चाहिए। श्रीगुरु के समीप लज्जा को त्यागकर साष्टांग प्रणाम करना चाहिए॥२८॥

शरीरमिन्द्रियं प्राणान् सद्गुरुभ्यो निवेदयेत्।
आत्मदारादिकं सर्वं सद्गुरुभ्यो निवेदयेत्॥ २९॥

शिष्य का शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण सभी कुछ गुरु कार्य के लिए अर्पित होना चाहिए। यहाँ तक कि अपने साथ पत्नी आदि परिवार के सदस्यों को गुरु कार्य में अर्पण कर देना चाहिए॥ २९॥

कृमिकीट भस्मविष्टा-दुर्गन्धिमलमूत्रकम्।
श्लेष्मरक्तं त्वचामांसं वञ्चयेन्न वरानने॥ ३०॥

भगवान् सदाशिव कहते हैं कि हे पार्वती! यह अपना शरीर कृमि, कीट, भस्म, विष्ठा, मल-मूत्र, त्वचा, मांस आदि का ही तो ढेर है। यह यदि गुरु कार्य के लिए अर्पित हो जाय, तो इससे श्रेष्ठ भला और क्या हो सकता है॥३०॥

संसारवृक्षमारूढा पतन्तो नरकार्णवे।
येन चैवोद्धृताः सर्वे तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ३१॥

उन सद्गुरुदेव भगवान् को शिष्य नमन करे, जो संसारवृक्ष पर आरूढ़ जीव का नरक सागर में गिरने से उद्धार करते हैं॥ ३१॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ३२॥

नमन उन श्रीगुरु को, जो अपने शिष्य के लिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर होने के साथ परब्रह्म परमेश्वर हैं॥ ३२॥

हेतवे जगतामेव संसारार्णवसेतवे।
प्रभवे सर्वविद्यानां शंभवे गुरवे नमः॥ ३३॥

जो संसार की उत्पत्ति करने वाला है, जो संसार रूपी सागर को पार कराने वाला सेतु है तथा जो सभी विद्याओं का उदय स्थान है, इस प्रकार के शिवस्वरूप, कल्याणकारी श्रीगुरु को प्रणाम है॥ ३३॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ३४॥

अज्ञानरूपी अंधकार से अंधे हुए जीव की आँखें जिसने ज्ञानरूपी काजल की शलाका से खोली है, ऐसे श्रीगुरु को प्रणाम है॥ ३४॥

त्वं पिता त्वं च मे माता त्वं बंधुस्त्वं च देवता।
संसारप्रतिबोधार्थं तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ३५॥

नमन उन श्री गुरु को, जो अपने शिष्य के लिए पिता हैं, माता हैं, बन्धु हैं, ईष्ट देवता हैं और संसार के सत्य का बोध कराने वाले हैं॥ ३५॥

यत्सत्येन जगत्सत्यं यत्प्रकाशेन भाति तत्।
यदानन्देन नन्दन्ति तस्मै श्री गुरवे नमः॥ ३६॥

जिसकी स्थिति से संसार की स्थिति है, जिसके प्रकाश से संसार प्रकाशित हो रहा है, जिसके आनन्द से संसार

आनन्दित हो रहा है, ऐसे सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीगुरु को नमन है ॥ ३६ ॥

यस्य स्थित्या सत्यमिदं यद्भाति भानुरूपतः ।
प्रियं पुत्रादि यत्प्रीत्या तस्मै श्री गुरवे नमः ॥ ३७ ॥

जिनके सत्य पर अवस्थित होकर यह जगत् सत्य प्रतिभासित होता है, जो सूर्य की भाँति सभी को प्रकाशित करते हैं, जिनके प्रेम के कारण ही पुत्र आदि सभी सम्बन्ध प्रीतिकर लगते हैं, उन सद्गुरु को नमन है ॥ ३७ ॥

येन चेतयते हीदं चित्तं चेतयते न यम्।
जाग्रत्स्वप्न सुषुप्त्यादि तस्मै श्री गुरवे नमः ॥ ३८ ॥

जिनकी चेतना से यह सम्पूर्ण जगत् चेतन प्रतीत होता है, हालाँकि सामान्य क्रम में मानव चित्त को इसका बोध नहीं हो पाता। जाग्रत्-स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्था को जो प्रकाशित करते हैं, उन चेतनारूपी सद्गुरु को नमन है ॥ ३८ ॥

यस्य ज्ञानादिदं विश्वं न दृश्यं भिन्नमेदतः ।
सदेकरूपरूपाय तस्मै श्री गुरवे नमः ॥ ३९ ॥

जिनके द्वारा ज्ञान मिलने से जगत् की भेददृष्टि समाप्त हो जाती है और वह शिव स्वरूप दिखाई देने लगता है, जिनका स्वरूप एकमात्र सत्य का स्वरूप ही है, उन सद्गुरु को नमन है ॥ ३९ ॥

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अनन्यभावभावाय तस्मै श्री गुरवे नमः ॥ ४० ॥

जो कहता है कि मैं ब्रह्म को नहीं जानता, वही ज्ञानी है। जो कहता है कि मैं जानता हूँ, वह नहीं जानता। जो स्वयं ही अभेद एवं भावपूर्ण ब्रह्म है उस सद्गुरु को नमन है ॥४० ॥

यस्य कारणरूपस्य कार्यरूपेण भाति यत्।
कार्यकारणरूपाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४१ ॥

जिस श्रीगुरु के कारण रूप होने से कार्यरूप संसार का ज्ञान होता है, ऐसे कार्य–कारण रूप श्रीगुरु को नमन है ॥ ४१ ॥

नानारूपम् इदं सर्वं न केनाप्यस्ति भिन्नता ।
कार्यकारणता चैव तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४२ ॥

अनेकों रूप वाले इस संसार में कहीं भी कुछ भी भिन्नता नहीं है, एकमात्र कार्य–कारण भाव ही है। ऐसे कार्य–कारण भावरूप श्रीगुरु को नमन है ॥ ४२ ॥

यदङ्घ्रिकमलद्वंद्वं द्वंद्वतापनिवारकम्।
तारकं सर्वदाऽऽपद्भ्यः श्रीगुरुं प्रणमाम्यहम्॥ ४३॥

जिनके दोनों चरण कमल शिष्य के जीवन में आने वाले सभी द्वन्द्वों, सर्व विधि तापों और सब तरह की आपदाओं का निवारण करते हैं। उन श्रीगुरु को मैं प्रणाम करता हूँ॥ ४३॥

शिवे क्रुद्धे गुरुस्त्राता गुरौ क्रुद्धे शिवो न हि।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं शरणं व्रजेत्॥ ४४॥

भगवान् भोलेनाथ स्वयं कहते हैं कि यदि शिव स्वयं क्रुद्ध हो जाएँ, तो भी शिष्य का त्राण करने में सद्गुरु समर्थ हैं। परन्तु यदि गुरुदेव रूष्ट हो गए, तो महारुद्र शिव भी उसकी रक्षा नहीं कर सकते। इसलिए सब तरह की कोशिश करके श्रीगुरु की शरण में जाना चाहिए॥ ४४॥

वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं वाङ्मनश्चित्तगोचरम्।
श्वेतरक्तप्रभाभिन्नं शिवशक्त्यात्मकं परम्॥ ४५॥

श्रीगुरु के चरणों की महिमा मन, वाणी, चित्त व इन्द्रिय ज्ञान से परे है। श्वेत-अरुण प्रभायुक्त गुरु चरणकमल परम

शिव व परा शक्ति का सहज वासस्थान हैं, उनकी मैं बार-बार वन्दना करता हूँ॥ ४५ ॥

गुकारं च गुणातीतं रुकारं रूपवर्जितम्।
गुणातीत स्वरूपं च यो दद्यात् स गुरुः स्मृतः ॥ ४६ ॥

'गु' शब्द से गुणातीत तथा 'रु' शब्द से रूपातीत प्रकट होता है। जो निर्गुण और निराकार आत्मस्वरूप प्रदान करता है, उसे गुरु कहते हैं ॥ ४६ ॥

अ-त्रिनेत्रः सर्वसाक्षी अ-चतुबहिरच्युतः।
अ-चतुर्वदनो ब्रह्मा श्री गुरुः कथितः प्रिये॥ ४७॥

हे प्रिये! जो तीन नेत्रों के न होने पर भी शिव के समान एवं सर्वसाक्षी है, चार भुजाओं के न होने पर भी विष्णु है, चार मुखमण्डलों के न होने पर भी जो ब्रह्मा है, उसे गुरु कहते हैं॥ ४७॥

अयं मयाञ्जलिर्बद्धो दयासागरवृद्धये।
यद् अनुग्रहतो जन्तुश्चित्र संसार मुक्तिभाक् ॥ ४८ ॥

ऐसे दयासागर गुरुदेव को मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। उनकी कृपा से ही जीवों को भेद बुद्धि वाले संसार से मुक्ति मिलती है॥ ४८ ॥

श्रीगुरोः परमं रूपं विवेक चक्षुषोऽमृतम्।
मन्दभाग्या न पश्यन्ति अन्धाः सूर्योदयं यथा॥ ४९॥

विवेकी मनुष्यों के लिए श्रीगुरु का परम रूप अमृत के समान होता हैं। जिस प्रकार अंधा मनुष्य सूर्योदय को नहीं देख पाता, उसी प्रकार मन्द भाग्य वाले भी श्रीगुरु के उस अमृततुल्य रूप को नहीं देख पाता है॥ ४९॥

श्रीनाथ चरणद्वन्द्वं यस्यां दिशि विराजते।
तस्यै दिशेनमस्कुर्याद् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये॥ ५०॥

उन परम स्थायी सद्गुरु के चरणद्वय जिस दिशा में भी विराजते हैं, उस दिशा में प्रतिदिन नमस्कार करने से शिष्यों का-भक्तों का परम कल्याण होता है॥ ५०॥

तस्यै दिशे सततमञ्जलिरेष आर्ये
प्रक्षिप्यते मुखरितो मधुपैर्बुधैश्च।
जागर्ति यत्र भगवान् गुरुचक्रवर्ती
विश्वोदयप्रलयनाटकनित्यसाक्षी॥ ५१॥

हे आर्ये! जिस दिशा में, विश्व की उत्पत्ति और प्रलय रूप नाटक के साक्षी भगवान् श्रीगुरु जागृत होते हैं, विद्वान्

मनुष्य उस दिशा में मंत्रोच्चार सहित, भ्रमरों के द्वारा खिलाये गये सुगन्धित पुष्पों को समर्पित करते हैं॥ ५१ ॥

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवं
सिद्धौघं बटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम्।

विरान् द्वयष्ट-चतुष्क-षष्टि-नवकं-वीरावलीपञ्चकं
श्रीमन्मालिनिमंत्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम्॥ ५२ ॥

श्री गुरुदेव ही परमगुरु एवं परात्पर गुरु हैं। उनमें तीनों नाथ गुरु आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ एवं गोरक्षनाथ समाये हैं। उन्हीं में भगवान् गणपति का वास है। उन परमप्रभु में तंत्र साधना के तीनों रहस्य मयपीठ-कामरूप, पूर्णगिरि एवं जालंधर पीठ स्थित हैं। मन्मथ आदि अष्ट भैरव, सभी महासिद्धों के समूह, तंत्र साधना में सर्वोच्च कहा जाने वाला विरंचि चक्र उन्हीं में है। स्कन्दादि बटुकत्रय, योन्याम्बादि दूतीमण्डल, अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल, सोममण्डल आदि मण्डल, प्रकाश व विमर्श के युगल पद के रहस्य उन्हीं में हैं। दशवीर, चौसठ योगिनियाँ, नवमुद्राएँ, पंचवीर तथा अ से क्ष तक सभी मातृकाएँ एवं मालिनीयंत्र

गुरुदेव के चेतनामण्डल में ही स्थित हैं। सभी तत्त्वों से युक्त गुरु मण्डल को मेरा बारम्बार प्रणाम है॥ ५२॥

अभ्यस्तैः सकलैः सुदीर्घमनिलैः व्याधिप्रदैर्दुष्करैः
प्रणायाम शतैरनेककरणै दुःखात्मकैर्दुजयैः।

यस्मिन्नभ्युदिते विनश्यति बली वायुः स्वयं तत्क्षणात्
प्रासुं तत्सहजं स्वभावमनिशं सेवध्वमेकं गुरुम्॥ ५३॥

गुरुदेव की आध्यात्मिक चेतना के रहस्य को प्रकट करने वाले ये मंत्र अपने फलितार्थ में रहस्यमय एवं गूढ़ होते हुए भी प्रक्रिया में अति सरल हैं। देवाधिदेव महादेव स्कन्दमाता जगदम्बा से कहते हैं, देवी! दुःख देने वाले, रोग उत्पन्न करने वाले, इन्द्रियों को पीड़ा पहुँचाने वाले, दुर्जय दीर्घश्वास की क्रिया रूपी सैकड़ों की संख्या में प्राणायाम के अभ्यास का भला क्या सुफल है? अरे! जिनकी चेतना के अन्तःकरण में उदय होने मात्र से बलवान् वायु तत्क्षण स्वयं प्रशमित हो जाती है। ऐसे गुरुदेव की निरन्तर सेवा करनी चाहिए, क्योंकि इस गुरुसेवा से सहज ही आत्मलाभ हो जाता है॥ ५३॥

स्वदेशिकस्यैव शरीर चिन्तनं
भवेदनन्तस्य शिवस्य चिन्तनं।
स्वदेशिकस्यैव च नाम कीर्तनं
भवेदनन्तस्य शिवस्य कीर्तनं॥ ५४॥

अपने गुरुदेव के स्वरूप का थोड़ा सा भी चिन्तन भगवान् शिव के स्वरूप के अनन्त चिन्तन के समान है। गुरुदेव के नाम का थोड़ा सा भी कीर्तन भगवान् शिव के अनन्त नाम कीर्तन के बराबर है॥ ५४॥

यत्पादरेणुकणिका काऽपि संसारवारिधेः।
सेतुबंधायते नाथं देशिकं तमुपास्महे॥ ५५॥

गुरुदेव की चरण धूलि का एक छोटा सा कण सेतुबन्ध की भाँति है। जिसके सहारे इस महाभवसागर को सरलता से पार किया जा सकता है। उन गुरुदेव की उपासना मैं करूँगा, ऐसा भाव प्रत्येक शिष्य को रखना चाहिए॥ ५५॥

यस्मादनुग्रहं लब्ध्वा महदज्ञानमुत्सृजेत्।
तस्मै श्रीदेशिकेन्द्राय नमश्चाभीष्टसिद्धये॥ ५६॥

जिसकी कृपा प्राप्त होने से महान अज्ञान का नाश होता है। उन श्रीगुरु को मैं अपने अभीष्ट सिद्धि के लिए प्रणाम करता हूँ॥ ५६॥

पादाब्जं सर्वसंसार दावानल विनाशकम्।
ब्रह्मरन्ध्रे सिताम्भोजमध्यस्थं चन्द्रमण्डले ॥ ५७ ॥

गुरुदेव की करुणा की व्याख्या करने वाले इन महामंत्रों में साधना के गहरे रहस्य सँजोये हैं। इन रहस्यों को गुरुभक्त साधकों के अन्तःकरण में सम्प्रेषित करते हुए भगवान् भोले नाथ के वचन हैं– गुरुदेव के चरण कमल संसार के सभी दावानलों का विनाश करने वाले हैं। गुरुभक्त साधकों को उन सद्गुरु का ध्यान ब्रह्मरन्ध्र में करना चाहिए ॥ ५७ ॥

अकथादित्रिरेखाब्जे सहस्रदलमण्डले।
हंसापार्श्वत्रिकोणे च स्मरेत्तन्मध्यगं गुरुम् ॥ ५८ ॥

यह ध्यान चन्द्रमण्डल के अन्दर श्वेत कमल के बीच में सहस्रदलमण्डल पर अकथ आदि तीन रेखाओं से बने हंस वर्ण युक्त त्रिकोण में करना चाहिए ॥ ५८ ॥

सकलभुवनसृष्टिः कल्पिताशेषपुष्टिर्
निखिलनिगमदृष्टिः संपदां व्यर्थदृष्टिः।
अवगुणपरिमार्ष्टिस्तत्पदार्थैकदृष्टिर्
भवगुणपरमेष्टिर्मोक्षमार्गैकदृष्टिः ॥ ५९ ॥

सकलभुवनरंगस्थापनास्तंभयष्टिः
सकरुणरसवृष्टिस्तत्त्वमालासमष्टिः।
सकलसमयसृष्टि सच्चिदानंददृष्टिर्
निवसतु मयि नित्यं श्रीगुरोर्दिव्यदृष्टिः॥ ६०॥

सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति करने वाली, सभी पदार्थों का पोषण करने वाली, समस्त शास्त्रों को धारण करने वाली, सम्पदा की व्यर्थता को बताने वाली, दुर्गुणों को दूर करने वाली, समस्त संसार सत्ता में एकदृष्टि रखने वाली, संसार के सभी गुणों को बनाने वाली, मोक्ष के मार्ग को दिखाने वाली, समस्त संसार रूपी रंगमंच की आधार स्तम्भ करुणा का रस बरसाने वाली, षट्विंशति (२६) तत्त्वों की समष्टि रूप माला के समान, जिसने सभी नियम और काल आदि की रचना की है, जो सच्चिदानन्द स्वरूप है, ऐसी उस श्रीगुरु की कृपादृष्टि मुझ पर नित्य बनी रहे॥ ५९-६०॥

अग्निशुद्धसमंतात ज्वालापरिचकाधिया।
मंत्रराजमिमं मन्येऽहर्निश पातु मृत्युतः॥ ६१॥

हे देवि! सद्गुरु का नाम परम मंत्र है। यह मंत्रराज है। इसका जप करने से बुद्धि अग्नि में तपाए सुवर्ण की

भाँति शुद्ध होती है। इसके स्मरण-चिंतन से निरन्तर मृत्यु से रक्षा होती है॥ ६१ ॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तत्समीपके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्य बाह्यतः॥ ६२॥

चलते हुए या बैठे हुए, दूर होने पर, पास रहने पर, बाहर होने पर अथवा अन्दर रहने पर गुरु नाम का यह महामंत्र समूची सामर्थ्य से रक्षा करता है॥ ६२ ॥

अजोऽहमजरोऽहं च अनादिनिधनः स्वयम्।
अविकारश्चिदानन्द अणीयान्महतो महान्॥ ६३॥

'अहं' शब्द के द्वारा वर्णित यह जन्मरहित, अमर, अजर, अनादि और मृत्युरहित है। यह विकाररहित चिदानन्द, अणु से भी सूक्ष्म और महान्से भी विराट् है॥ ६३ ॥

अपूर्वाणां परं नित्यं स्वयं ज्योतिर्निरामयम्।
विरजं परमाकाशं ध्रुवमानन्दमव्ययम् ॥ ६४॥

सद्गुरु चेतना का यह तत्त्व सब भाँति अपूर्व है, नित्य है, स्वयं प्रकाशित एवं निरामय है। इसमें किसी तरह का विकार नहीं है। यह परमाकाश रूप, अचल, अक्षय और आनन्द का स्रोत है॥ ६४॥

श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानश्चतुष्टयम्।
यस्य चात्मतपो वेद देशिकं च सदा स्मरेत्॥ ६५॥

जिस श्रीगुरुदेव का आत्म तपोबल वेदशास्त्र, प्रत्यक्ष, इतिहास, अनुमान इन चारों प्रमाणों से जाना जाता है, उस श्रीगुरु का स्मरण करना चाहिए॥ ६५॥

मननं यद्वरं कार्यं तद्वदामि महामते।
साधुत्वं च मया दृष्ट्वा त्वयि तिष्ठति साम्प्रतम् ॥ ६६॥

हे महामति देवि! इसके मनन से श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं। तुम्हारी साधुता को देखकर ही मैंने यह सत्य तुम्हें बताया है॥ ६६॥

अखण्डमण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥ ६७॥

अखण्ड वलयाकार चेतना के रूप में जो इस सम्पूर्ण चर-अचर जगत् में व्याप्त हैं, ब्रह्म तत्त्व व आत्म तत्त्व के रूप में यही चेतना उनके श्री चरणों की कृपा से दर्शित होती है, उन श्री सद्‌गुरु को नमन है॥ ६७॥

सर्वश्रुतिशिरोरत्नविराजितपदाम्बुजः।
वेदान्ताम्बुजसूर्यो, यस्तस्मै श्री गुरवेनमः॥ ६८॥

वैदिक ऋचाओं एवं उपनिषद् की श्रुतियों के सभी महावाक्य (मंत्र) रत्न उनके श्री चरणों में विराजित हैं। उन गुरुदेव की चेतना से सूर्य का प्रकाश पाकर ही वेदान्त का कमल खिलता है, ऐसे सद्गुरु को नमन है॥ ६८॥

यस्य स्मरणमात्रेण, ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम्।
य एव सर्वसंप्राप्तिस्तस्मै श्री गुरवे नमः॥ ६९॥

जिनके स्मरण करने भर से अपने आप ही ज्ञान उत्पन्न होता है, जो अपने में सभी आध्यात्मिक सम्पदा की प्राप्ति है, उन कृपालु सद्गुरु को नमन है॥ ६९॥

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम्।
नादबिन्दुकलातीतं तस्मै श्री गुरवे नमः॥ ७०॥

जो परम चैतन्य, शाश्वत, शान्त और आकाश से भी अतीत और माया से परे हैं, नाद, बिन्दु एवं कला से भी परे हैं, ऐसे सद्गुरु को नमन है॥ ७०॥

स्थावरं जंगमं चैव तथा चैव चराचरम्।
व्याप्तं येन जगत्सर्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ७१॥

परम आराध्य गुरुदेव इस जड़-चेतन, चर-अचर सम्पूर्ण जगत् में संव्याप्त हैं, उन सद्गुरु को नमन है॥ ७१॥

ज्ञानशक्तिसमारूढस्तत्त्वमालाविभूषितः।
भुक्तिमुक्तिप्रदाताय तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ७२॥

ज्ञान शक्ति पर आरूढ़, सभी तत्त्वों की माला से विभूषित गुरुदेव भोग एवं मोक्ष दोनों ही फल प्रदान करने वाले हैं, उन कृपालु सद्गुरु को नमन है॥ ७२॥

अनेकजन्मसंप्राप्त-सर्वकर्मविदाहिने।
स्वात्मज्ञानप्रभावेण तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ७३॥

जो अपने आत्मज्ञान के प्रभाव से शिष्य के अनेक जन्मों से संचित सभी कर्मों को भस्मसात कर देते हैं, उन कृपालु सद्गुरु को नमन है॥ ७३॥

न गुरोरधिकं तत्वं न गुरोरधिकं तपः।
तत्वम् ज्ञानात्परं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ७४॥

श्री गुरुदेव से बढ़कर अन्य कोई तत्त्व नहीं है। श्री गुरु सेवा से बढ़कर कोई दूसरा तप नहीं है, उनसे बढ़कर अन्य कोई ज्ञान नहीं है, ऐसे कृपालु गुरुदेव को नमन है॥ ७४॥

मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुस्त्रीजगद्गुरुः।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ७५॥

मेरे स्वामी गुरुदेव ही जगत् के स्वामी हैं। मेरे गुरुदेव ही जगत्गुरु हैं। मेरे आत्मस्वरूप गुरुदेव समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा हैं। ऐसे श्री गुरुदेव को मेरा नमन है॥ ७५ ॥

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोःपदम्।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोःकृपा॥ ७६ ॥

परम पूज्य गुरुदेव की भावमयी मूर्ति ध्यान का मूल है। उनके चरण कमल पूजा का मूल हैं। उनके द्वारा कहे गए वाक्य मूल मंत्र हैं। उनकी कृपा ही मोक्ष का मूल है॥ ७६ ॥

गुरुरादिनादिश्च गुरुः परम दैवतम्।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः॥ ७७॥

गुरुदेव ही आदि और अनादि हैं, वही परम देव हैं। उनसे बढ़कर और कुछ भी नहीं। उन श्रीगुरु को नमन है॥ ७७ ॥

सप्त सागर पर्यन्तं तीर्थास्नादिकं फलम्।
गुरोरङ्घ्रपयोबिन्दु सहस्रांशेन दुर्लभम्॥ ७८ ॥

सप्त सागर पर्यन्त जितने भी तीर्थ उन सभी के स्नान का फल गुरुदेव के पादप्रक्षालन के जल बिन्दुओं का हजारवाँ हिस्सा भी नहीं है॥ ७८ ॥

हरौ रुष्टे गुरस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।
तस्मात सर्व प्रयत्नेन श्रीगुरुं शरणं व्रजेत्॥ ७९॥

यदि भगवान् शिव स्वयं रुठ जायें, तो श्रीगुरु की कृपा से रक्षा हो जाती है, लेकिन यदि गुरु रुठ जाए, तो कोई भी रक्षा करने में समर्थ नहीं होता। इसलिए सभी प्रकार से कृपालु सद्‌गुरु की शरण में जाना चाहिए॥ ७९॥

गुरुरेव जगत्सर्वं ब्रह्म विष्णुशिवात्मकम्।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात्संपूजयेद्‌गुरुम्॥ ८०॥

ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव रूप यह जो जगत है, वह गुरुदेव का ही स्वरूप है। गुरुदेव से अधिक और कुछ भी नहीं है। इसलिए सब तरह से गुरुवर की अर्चना करनी चाहिए॥ ८०॥

ज्ञानं विज्ञानसहितं लभ्यते गुरुभक्तितः।
गुरोः परतरं नास्ति ध्येयोऽसौ गुरुमार्गिभिः॥ ८१॥

गुरुदेव की भक्ति से ज्ञान-विज्ञान साहित सब कुछ अपने आप मिल जाता है। उन सद्‌गुरु से श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। इसलिए उन्हीं के बताए मार्ग का ध्यान करना चाहिए॥ ८१॥

यस्मात्परतरं नास्ति नेति नेतीति वै श्रुतिः।
मनसा वचसा चैव नित्यमाराधयेद् गुरुम्॥ ८२॥

जिनसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। श्रुतियों में इन्हीं की पराचेतना को नेति-नेति कहकर निरूपित किया गया है। इसलिए मन और वाणी से इन्हीं सद्गुरु की आराधना नित्य करते रहना चाहिए॥ ८२॥

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मविष्णुसदाशिवाः।
समर्थाः प्रभवादौ च केवलं गुरुसेवया॥ ८३॥

ब्रह्मा, विष्णु और सदाशिव गुरुकृपा के प्रभाव से ही समर्थ हुए हैं। इसलिए गुरुसेवा को ही अपना कर्तव्य मानना चाहिए॥ ८३॥

देवकिन्नरगन्धर्वाःपितरो यक्षचारणाः।
मुनयोपि न जानन्ति गुरुशुश्रूषणे विधिम्॥ ८४॥

हालाँकि गुरु सेवा की ठीक-ठीक विधि कोई भी नहीं जानता। फिर भले ही वह देव, किन्नर, गन्धर्व, पितर, यक्ष, चारण अथवा श्रेष्ठ मुनि ही क्यों न हों॥ ८४॥

महाहंकारगर्वेण तपोविद्याबलान्विताः।
संसारकुहरावर्ते घटयंत्रे यथा घटाः॥ ८५॥

तप और विद्या को सब कुछ समझने वाले अहंकारी जन इस संसार चक्र में बारम्बार भटकते रहते हैं, जैसे कि घट यंत्र के चक्र में घट घूमता रहता है॥ ८५॥

न मुक्ता देवगंधर्वाः पितरो यक्षकिन्नराः।
ऋषयः सर्वसिद्धाश्च गुरुसेवापराङ्मुखाः॥ ८६॥

देव हों या गन्धर्व, पितर, यक्ष, किन्नर, सिद्ध अथवा ऋषि कोई भी हों, गुरु सेवा से विमुख होने पर उन्हें कदापि मोक्ष नहीं मिल सकता है॥ ८६॥

ध्यानं शृणु महादेवि सर्वानन्दप्रदायकम्।
सर्वसौख्यकरं नित्यं भुक्तिमुक्तिविधायकम्॥ ८७॥

भगवान् भोलेनाथ कहते हैं, हे महादेवि! सुनो, गुरुदेव का ध्यान सभी तरह के आनन्द का प्रदाता है। यह सभी सुखों को देने वाला है। यह सांसारिक सुख भोगों को देने के साथ मोक्ष को भी देता है॥ ८७॥

श्रीमत्परब्रह्म गुरुं स्मरामि श्रीमत्परब्रह्म गुरुं वदामि।
श्रीमत्परब्रह्म गुरुं नमामि श्रीमत्परब्रह्म गुरुं भजामि॥ ८८॥

सच्चे शिष्य को इस सत्य के लिए संकल्पित रहना चाहिए कि मैं गुरुदेव का स्मरण करूँगा, गुरुदेव की

स्तुति-कथा कहूँगा। परब्रह्म की चेतना का साकार रूप श्री गुरुदेव की वाणी, मन और कर्म से सेवा आराधना करूँगा॥ ८८॥

ब्रह्मानंदं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥ ८९॥

श्री गुरुदेव ब्रह्मानन्द का परम सुख देने वाली साकार मूर्ति हैं। वे द्वन्द्वातीत चिदाकाश हैं। तत्त्वमसि आदि श्रुति वाक्यों का लक्ष्य वही हैं। वे प्रभु एक, नित्य, विमल, अचल एवं सभी कर्मों के साक्षी रूप हैं। श्री गुरुदेव सभी भावों से परे, प्रकृति के तीनों गुणों से सर्वथा रहित हैं। उन्हें भावपूर्ण नमन है॥ ८९॥

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरंञ्जनम्।
नित्यबोधं चिदानन्दं गुरुं ब्रह्म नमाम्यहम्॥ ९०॥

श्री गुरुदेव नित्य, शुद्ध, निराभास, निराकार एवं माया से परे हैं। वे नित्यबोधमय एवं चिदानन्दमय हैं। उन परात्पर ब्रह्म गुरुदेव को नमन है॥ ९०॥

हृदंबुजे कर्णिकमध्यसंस्थे
सिंहासनेसंस्थितदिव्यमूर्तिम्।
ध्यायेद्गुरुं चन्द्रकलाप्रकाशं
चित्पुस्तकाभीष्टवरं दधानम्॥ ११॥

(शिष्य धारणा करें) उसके हृदय कमल की कर्णिकाओं के बीच स्थित सिंहासन में गुरुदेव की दिव्यमूर्ति विराजमान है। इस दिव्यमूर्ति से शुभ्र चाँदनी सा प्रकाश विकीर्ण हो रहा है। इन सद्गुरुदेव के एक हाथ में पुस्तक है और दूसरा हाथ वर प्रदान करने की मुद्रा में ऊपर उठा है॥ ११॥

श्वेताम्बरं श्वेतविलेपपुष्पं
मुक्ताविभूषं मुदितं द्विनेत्रम्।
वामांङ्कपीठस्थितदिव्यशक्तिं
मन्दस्मितं सांद्रकृपानिधानम्॥ १२॥

सद्गुरुदेव श्वेतवस्त्र पहने हुए हैं, उन्होंने श्वेत लेप धारण किया है। वे श्वेत पुष्प एवं मोतियों की माला से अलंकृत हैं। उनके दोनों नेत्रों से आनन्द छलक रहा है। उनके वामभाग में उनकी लीला सहचरी दिव्य शक्ति माँ

विद्यमान हैं। ऐसे मधुर मधुमय मुस्कान बिखेरने वाले गुरुदेव का ध्यान करना चाहिए॥ १२॥

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं
ज्ञानस्वरूपं निजबोधयुक्तम्।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं
श्रीमद्गुरुंनित्यमहम् नमामि॥ १३॥

गुरुदेव आनन्दमय रूप हैं। वे शिष्यों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं। वे प्रभु प्रसन्नमुख एवं ज्ञानमय हैं। वे सदा आत्मबोध में निमग्न रहते हैं। योगीजन सदा उनकी स्तुति करते हैं। संसार रूपी रोग के वही एक मात्र वैद्य हैं। मैं उन गुरुदेव का नित्य नमन करता हूँ॥ १३॥

यस्मिन् सृष्टिस्थितिध्वंसनिग्रहानुग्रहात्मकम्।
कृत्यं पञ्चविधं शश्वद्भासते तं नमाम्यहम्॥ १४॥

जिनकी चेतना में उत्पत्ति, स्थिति, ध्वंस, निग्रह एवं अनुग्रह ये पाँच कार्य सदा होते रहते हैं, उन गुरुदेव को मेरा नमन है॥ १४॥

प्रातः शिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम्।
वराभययुतं शान्तं स्मरेत्तं नामपूर्वकम्॥ १५॥

इस भाव से गुरुदेव को नमन करते हुए प्रातःकाल सहस्रारदल कमल में शान्त; वराभय मुद्रा वाले, कृपा-करुणा रूपी दोनों नेत्रों वाले, रक्षण-पोषण रूपी दो भुजाओं वाले गुरुदेव का नाम सहित स्मरण करना चाहिए ॥ ९५ ॥

न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं
न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ।
शिवशासनतः शिवशासनतः
शिवशासनतः शिवशासनतः ॥ ९६ ॥

गुरुदेव के अधिक कुछ नहीं है। गुरुदेव से अधिक कुछ नहीं है। गुरुदेव से अधिक कुछ नहीं है। गुरुदेव से अधिक कुछ नहीं है। यह शिव का आदेश है। यह शिव का आदेश है। यह शिव का आदेश है। यह शिव का आदेश है ॥ ९६ ॥

इदमेव शिवं त्विदमेवशिवं
त्विदमेव शिवं त्विदमेव शिवम् ।
मम शासनतो मम शासनतो
मम शासनतो मम शासनतः ॥ ९७ ॥

भगवान् शिव कहते हैं– यह गुरु तत्त्व कल्याणकारी है। यह कल्याणकारी है। यह कल्याणकारी है। यह कल्याणकारी है। यह मेरा आदेश है। यह मेरा आदेश है। यह मेरा आदेश है। यह मेरा आदेश है॥ ९७॥

एवं विधं गुरुं ध्यात्वा ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम्।
तत्सद्गुरुप्रसादेन मुक्तोऽहमिति भावयेत्॥ ९८॥

इस तरह (पिछली कड़ी में बतायी गयी) विधि से गुरुदेव का ध्यान करने से स्वतः ही ज्ञान उत्पन्न होता है। उन कृपालु सद्गुरु की कृपा से 'मैं मुक्त हूँ' ऐसा चिन्तन करना चाहिए॥ ९८॥

गुरुदर्शितमार्गेण मनःशुद्धिं तु कारयेत।
अनित्यं खण्डयेत् सर्वं यत्किञ्चिदात्मगोचरम्॥ ९९॥

गुरुदेव जो भी राह दिखायें, उसी राह पर चलते हुए मन की शुद्धि करना कर्त्तव्य है। शिष्य को चाहिए कि मन व इन्द्रियों से भोगे जाने वाले सभी भोगों को और सभी अनित्य पदार्थों को त्याग दे॥ ९९॥

ज्ञेयं सर्वस्वरूपं च ज्ञानं च मन उच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयसमं कुर्यात् नान्यः पन्था द्वितीयकः॥ १००॥

सभी को आत्म स्वरूप अनुभव करना ज्ञान है। जिसे ज्ञान हो रहा है और जिसका ज्ञान हो रहा है, ये दोनों ही समान है। अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् अपनी आत्मा का विस्तार है। ऐसा अनुभव ही मोक्ष कारक है। इसके सिवा अन्य कोई पथ नहीं है॥ १००॥

एवं श्रुत्वा महादेवि गुरुनिन्दां करोति यः।
स याति नरकं घोरं यावच् चन्द्रदिवाकरौ॥ १०१॥

गुरु की जो महिमा मैंने पहले बतायी, उसे जानकर, सुनकर भी यदि कोई गुरुनिन्दा करता है, वह जब तक चन्द्र, सूर्य है, तब तक घोर नरक में पड़ा रहता है॥ १०१॥

यावत्कल्पांतको देहस्तावदेव गुरुं स्मरेत्।
गुरुलोपो न कर्तव्यः स्वच्छन्दो यदि वा भवेत्॥ १०२॥

इसलिए जब तक देह है तब तक यहाँ तक कि कल्पान्त तक भी गुरुदेव का स्मरण करते रहना चाहिए। शिष्य को चाहिए कि मुक्त होने पर भी वह गुरु स्मरण का लोप न होने दे॥ १०२॥

हुंकारेण न वक्तव्यं प्राज्ञैः शिष्यैः कथञ्चन।
गुरोरग्रे न वक्तव्यम् असत्यं च कदाचन॥ १०३॥

जो शिष्य प्रज्ञावान् व विवेकी है, वे कभी भी अपने गुरु के सामने हुंकार-पूर्वक (तेज स्वर में) बात नहीं करते। इतना ही नहीं, वे गुरु के सामने कभी भी असत्य नहीं बोलते॥ १०३॥

गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य गुरुंनिर्जित्य वादतः।
अरण्ये निर्जले देशे स भवेद् ब्रह्मराक्षसः॥ १०४॥

और जो गुरु के पास तू करके, हुं करके बाते करते हैं वे किसी निर्जल अरण्य प्रदेश में ब्रह्मराक्षस का जीवन जीने के लिए विवश होते हैं॥ १०४॥

मुनिभिः पन्नगैर्वाऽपि सुरैर्वा शापितो यदी।
कालमृत्युभयाद्वापि गुरुर्रक्षति पार्वति॥ १०५॥

भगवान् शिव कहते हैं—हे पार्वती! मुनि, नाग, देवों के शाप से, काल और मृत्यु के भय से केवल गुरुदेव ही शिष्य का रक्षण करने में समर्थ हैं॥ १०५॥

अशक्ता हि सुराद्याश्च अशक्ता मुनयस्तथा।
गुरुशापेन ते शीघ्रं क्षयं यान्ति न संशयः॥ १०६॥

लेकिन जो गुरु के शाप से ग्रस्त हैं, उनकी रक्षा कोई

भी देवता अथवा मुनि नहीं कर पाते। ऐसे शिष्य शीघ्र ही नष्ट होते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १०६ ॥

मंत्रराजमिदं देवि गुरुरित्यक्षरद्वयम्।
स्मृतिवेदार्थवाक्येन गुरुः साक्षात्परं पदम्॥ १०७॥

'गुरु' ये दो अक्षर अपने में महामंत्र है। यह महामंत्र सभी मंत्रों का राजा है। सभी स्मृतियों एवं वेदवाक्यों का मर्म यही है कि गुरु ही स्वयं परमपद है॥ १०७॥

श्रुतिस्मृती अविज्ञाय केवलं गुरुसेवकाः।
ते वै सन्यासिनः प्रोक्ता इतरे वेषधारिणः॥ १०८॥

जो शिष्य अपने गुरुदेव की सेवा में तल्लीन है, वे भले ही श्रुतियों व स्मृतियों को न जानते हों, पर वे हैं सच्चे संन्यासी। इसके विपरीत जो गुरुसेवा से विमुख हैं, वे भले ही संन्यासी का वेष धारण किये हों, पर वे केवल निरवेषधारी हैं। उनमें कोई आध्यात्मिक तत्त्व नहीं हैं ॥ १०८॥

नित्यं ब्रह्म निराकारं निर्गुणं बोधयेत् परम्।
सर्वं ब्रह्म निराभासं दीपो दीपान्तरं यथा॥ १०९॥

नित्य निराकार, निर्गुण ब्रह्म का बोध केवल गुरुकृपा से मिलता है। जिस तरह दीप से दीप जलता है, उसी तरह

से गुरुदेव शिष्य के अन्तस् में ब्रह्मज्ञान की ज्योति जला देते हैं॥ १०९॥

गुरोः कृपाप्रसादेन आत्मारामं निरीक्षयेत्।
अनेन् गुरुमार्गेण स्वात्मज्ञानं प्रवर्त्तते॥ ११०॥

शिष्य को चाहिए कि वह अपनी सद्गुरु कृपा की छाँव में आत्मतत्त्व का चिंतन करे। ऐसा करते रहने पर गुरुदेव के द्वारा दिखाए मार्ग से स्वतः आत्मज्ञान हो जायेगा॥ ११०॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं परमात्मस्वरूपकम्।
स्थावरं जंगमं चैव प्रणमामि जगन्मयम्॥ १११॥

ब्रह्मा से लेकर तिनके तक सभी जड़-चेतन परमात्मा का स्वरूप है और सद्गुरु परमात्ममय है। इसीलिए यह सम्पूर्ण जगत् उन्हीं का रूप है। ऐसा जानकर मैं उन्हें प्रणाम् करता हूँ, शिष्य ऐसा भाव रखे॥ १११॥

वन्देऽहं सच्चिदानन्दं भेदातीतं सदा गुरुम्।
नित्यं पूर्णं निराकारं निर्गुणं स्वात्मसंस्थितम्॥ ११२॥

शिष्य को चाहिए कि वह सच्चिदानन्द सभी भेद से परे गुरुतत्त्व को अनुभव करे और नित्य, पूर्ण, निराकार, निर्गुण और आत्मस्थित गुरुतत्त्व की वन्दना करे॥ ११२॥

परात्परं सदाध्येयं नित्यमानन्दकारकम्।

हृदयाकाशमध्यस्थं शुद्धस्फटिकसन्निभम्॥ ११३॥

श्री गुरुदेव आनन्द प्रदायक, नित्य एवं परात्पर हैं, उनके इसी शुद्ध स्फटिक स्वरूप का हृदयाकाश मध्य में ध्यान करना चाहिए॥ ११३॥

स्फटिकप्रतिमारूपं दृश्यते दर्पणे यथा।

तथात्मनि चिदाकारं आनन्दं सोऽहमित्युत॥ ११४॥

जिस तरह से दर्पण में स्फटिक की प्रतिमा दिखाई देती है, उसी तरह से आत्मा में चिदाकार आनन्दमय सद्गुरु का दर्शन होता है॥११४॥

अंगुष्ठमात्रपुरुषं ध्यायतश्चिन्मयं हृदि।

तत्र स्फुरति भावो यः शृणु तं कथयाम्यहम्॥ ११५॥

हृदय में चिन्मय आत्म ज्योति के अंगुष्ठ मात्र स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। इस ध्यान की गहनता, सघनता व प्रगाढ़ता जो भाव स्फुरित होते हैं, उन्हें सुनो॥ ११५॥

अगोचरं तथाऽगम्यं नामरूपविवर्जितम्।

निःशब्दं तद्विजानीयात् स्वभावं ब्रह्म पार्वति॥ ११६॥

भगवान् शिव कहते हैं-हे पार्वती! इन्द्रियों से परे, सब भाँति अगम्य, नाम, रूप आदि विशेषताओं से परे शब्द से रहित ब्रह्म का अनुभव अपने ही स्वरूप में होता है॥ ११६॥

यथा गन्धः स्वभावेन कर्पूरकुसुमादिषु।
शीतोष्णादिस्वभावेन तथा ब्रह्म च शाश्वतम्॥ ११७॥

जिस तरह से कर्पूर एवं पुष्प आदि सुगन्धित पदार्थों में स्वाभाविक ही सुगन्ध व्याप्त है, जिस भाँति सर्दी एवं गर्मी स्वाभाविक है, उसी भाँति ब्रह्म शाश्वत है॥ ११७॥

स्वयं तथाविधो भूत्वा स्थातव्यं यत्रकुत्रचित्।
कीटभ्रमरवत् तत्र ध्यानं भवति तादृशम्॥ ११८॥

वह श्रीगुरु स्वयं ब्रह्म रूप में सर्वत्र स्थित है, जिस प्रकार भ्रमर के सान्निध्य से कीट भी भ्रमर ही हो जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा ब्रह्म का ध्यान करने से ब्रह्म ही हो जाता है॥ ११८॥

गुरुध्यानं तथा कृत्वा स्वयं ब्रह्ममयो भवेत्।
पिण्डे पदे तथा रूपे मुक्तोऽसौ नात्र संशयः॥ ११९॥

इस प्रकार अपने चित्त में सद्गुरु का ध्यान करने से शिष्य ब्रह्ममय हो जाता है तथा वह पिण्ड, पद और रूप से मुक्त हो जाता है, इसमें कहीं भी शंका नहीं है॥ ११९॥

श्री पार्वत्युवाच

पिण्डं किंतु महादेव पदं कि समुदाहृतम्।
रूपातीतं च रूपं किं एतद् आख्याहि शंकर॥ १२०॥

पार्वती जी बोली- हे महादेव! पिण्ड क्या है? पद किसे कहते हैं? हे शंकर! रूप क्या है और रूप से परे क्या है? ये विस्तार पूर्वक बताइये॥ १२०॥

श्री महादेव उवाच-

पिण्डं कुण्डलिनीशक्तिः, पदं हंसमुदाहृतम्।
रूपं बिन्दुरितिज्ञेयं रूपातीतं निरञ्जनम्॥ १२१॥

महादेव बोले-हे देवि! कुण्डलिनी शक्ति ही पिण्ड है। हंस को पद तथा बिन्दु को रूप कहते हैं और निरञ्जन, निराकार को रूपातीत कहते हैं॥१२१॥

पिण्डे मुक्ता पदे मुक्ता, रूपे मुक्ता वरानने।
रूपातीते तु ये मुक्तास्ते, मुक्तानामसंशय॥ १२२॥

हे सुमुखि! जिसकी कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है, वह पिण्ड से मुक्त हो जाता है। जिसके प्राण हंस में स्थित हो जाते हैं, वह पद से मुक्त हो जाता है और जिसका आत्मज्योति का नील बिन्दु के दर्शन हो जाते हैं, वह रूप से मुक्त हो जाता है। जो निरञ्जन, निराकार और निर्विकल्प स्थिति में स्थित हो जाता है, वह यथार्थ में मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ १२२॥

स्वयं सर्वमयो भूत्वा परं तत्त्वं विलोकयेत्।
परात्परतरं नान्यत् सर्वमेतन्निरालयम् ॥ १२३॥

ऐसा मुक्त पुरुष स्वयं सर्वमय होकर परम तत्त्व को देखता है। वह इस सत्य को अनुभव करता है कि न तो कोई दूसरा है और न ही इस आत्मतत्त्व से बढ़कर कोई श्रेष्ठता है। ऐसा अनुभव करते हुए वह सम्पूर्ण निराश्रय होकर जीता है॥ १२३॥

तस्यावलोकनं प्राप्य सर्वसंगविवर्जितः।
एकाकी निःस्पृहः शान्तः तिष्ठासेत् तत्प्रसादतः॥ १२४॥

श्री गुरुकृपा से इस परम तत्त्व का अवलोकन करने के बाद शिष्य-साधक सभी आसक्तियों से रहित, एकाकी, निस्पृह, शान्त और स्थिर हो जाता है॥ १२४॥

लब्धं वाऽथ न लब्धं वा स्वल्पं वा बहुलं तथा।
निष्कामेनैव भोक्तव्यं सदा संतुष्टचेतसा॥ १२५॥

उसे अभीष्ट मिले या न मिले, उसे ज्यादा मिले अथवा थोड़ा मिले, इस चिंता को छोड़कर वह सभी कामनाओं से रहित संतुष्ट चित्त होकर जीवनयापन करता है॥ १२५॥

सर्वज्ञपदमित्याहुर्देही सर्वमयो बुधाः।
सदानन्दः सदाशान्तो रमते यत्र-कुत्रचित्॥ १२६॥

ज्ञानी जन इस अवस्था को ही सर्वज्ञ पद कहते हैं। इसे प्राप्त करके देहधारी जीव सर्वात्म हो जाता है। इस अवस्था को पाने वाला साधक सदा शान्त, हमेशा ही आनन्दित एवं यत्र-तत्र रमने वाला होता है॥ १२६॥

यत्रैव तिष्ठते सोऽपि स देशः पुण्यभाजनम्।
मुक्तस्य लक्षणं देवि तवाग्रे कथितं मया॥ १२७॥

भगवान् सदाशिव कहते हैं, हे देवि! इस तरह से मैंने आपको मुक्त पुरुष के लक्षण सुनाये। ऐसा मुक्त पुरुष जहाँ कहीं भी निवास करता है, वह देश पुण्यभूमि हो जाता है॥ १२७॥

उपदेशः तथा देवि गुरुमार्गेण मुक्तिदः।
गुरुभक्तिस्तथा ध्यानं सकलं तव कीर्तितम्॥ १२८॥

हे देवि! उपदेशित गुरु मार्ग मुक्तिदायक है। गुरु की भक्ति, गुरु का ध्यान और वह सब जो आपसे कहा गया है॥ १२८॥

अनेन यद्भवेत् कार्यं तद्वदामि महामते।
लोकोपकारकं देवि लौकिकं तु न भावयेत्॥ १२९॥

हे महान् बुद्धिवाली! इस प्रकार से जो कार्य सिद्ध होगा, वह मैं बताता हूँ। इसका उपयोग लोककल्याण के लिए करना चाहिए, न कि लौकिक कार्य के लिए॥ १२९॥

लौकिकात्कर्मणो यान्ति ज्ञानहीना भवार्णवम्।
ज्ञानी तु भावयेत्सर्वं कर्म निष्कर्म यत्कृतम्॥ १३०॥

जो ज्ञानहीन लोग इन सबका लौकिक कामनाओं के लिए उपयोग करते हैं, उन्हें बार-बार भवसागर में गिरना पड़ता है, परन्तु जो ज्ञानी अपने कर्म का निष्काम भाव से प्रतिपादन करते हैं, वे सभी कर्म बन्धनों से मुक्त रहते हैं॥ १३०॥

इदं तु भक्तिभावेन पठते शृणुते यदि।
लिखित्वा तत्प्रदातव्यं तत्सर्वं सफलं भवेत्॥ १३१॥

गुरुगीता का भक्तिपूर्वक पठन, श्रवण एवं इसका लेखन तथा दूसरों को इसे देने से सर्वसुफल प्राप्त होते हैं ॥ १३१ ॥

गुरुगीतात्मकं देवि शुद्धतत्त्वं मयोदितम्।
भवव्याधिविनाशार्थं स्वयमेव जपेत्सदा ॥ १३२ ॥

प्रभु कहते हैं– हे देवि! गुरुगीता रूपी इस शुद्ध तत्त्व को मैंने आपके सामने कहा है। इसका विधिपूर्वक जप सभी सांसारिक कठिनाइयों का विनाश करने वाला है ॥ १३२ ॥

गुरुगीताक्षरैकं तु मंत्रराजमिमं जपेत्।
अन्ये च विविधा मंत्राः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ १३३ ॥

गुरुगीता का प्रत्येक अक्षर मंत्रराज है। अन्य सभी मंत्र मिलकर भी इसकी सोलहवीं कला भी नहीं हैं ॥ १३३ ॥

अनन्तफलमाप्नोति गुरुगीताजपेन तु।
सर्वपापप्रशमनं सर्वदारिद्र्यनाशनम् ॥ १३४ ॥

इस गुरुगीता की मंत्रमाला के जप का अनन्तफल है। इसका पाठ करने वाला इस अनन्त फल को प्राप्त करता है। ऐसा करने से उसके सभी पापों का एवं सभी तरह की दरिद्रता का विनाश होता है ॥ १३४ ॥

कालमृत्युभयहरं सर्वसंकटनाशनम्।
यक्षराक्षसभूतानां चौरव्याघ्रभयापहम्॥ १३५॥

गुरुगीता का जप काल एवं मृत्यु के भय का हरण करने वाला है। इससे सभी संकटों का नाश होता है। इतना ही नहीं इससे यक्ष, राक्षस, भूत, चोर एवं व्याघ्र आदि के भय का भी हरण होता है॥ १३५॥

महाव्याधिहरं सर्वं विभूतिसिद्धिदं भवेत्।
अथवा मोहनं वश्यं स्वयमेवं जपेत्सदा॥ १३६॥

इसके जप से सभी व्याधियाँ दूर होती हैं। सभी सिद्धियों एवं अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति होती है। यहाँ तक कि इस गीता को स्वयं जपने से सम्मोहन, वशीकरण आदि की शक्ति स्वतः ही प्राप्त हो जाती है॥ १३६॥

वस्त्रासने च दारिद्र्यं पाषाणे रोगसम्भवः।
मेदिन्यां दुःखमाप्नोति काष्ठे भवति निष्फलम्॥ १३७॥

वस्त्रासन पर साधना करने से दरिद्रता आती है; पत्थर पर साधना करने से रोग होते हैं। धरती पर बैठकर साधना करने से दुःख मिलता है और काष्ठासन पर की गई साधना निष्फल होती है॥ १३७॥

कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि।
कुशासने ज्ञानसिद्धिः सर्वसिद्धिस्तु कम्बले॥ १३८॥

काले हरिण के चर्म पर साधना करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है, व्याघ्रचर्म पर साधना करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है, कुश के आसन पर साधना करने से ज्ञान सिद्ध होता है, जबकि कम्बल पर बैठकर साधना करने से सर्वसिद्धियाँ मिलती है॥ १३८॥

कुशैर्वा दूर्वया देवि आसने शुभ्रकम्बले।
उपविश्य ततो देवि जपेदेकाग्रमानसः॥ १३९॥

भगवान् शिव कहते हैं—हे देवि! इस गुरुगीता का स्वाध्याय कुश के आसन पर, दूब के आसन पर अथवा श्वेत कम्बल के आसन पर बैठकर करना उचित है॥ १३९॥

ध्येयं शुक्लं च शान्त्यर्थं वश्ये रक्तासनं प्रिये।
अभिचारं कृष्णवर्णं पीतवर्णं धनागमे॥ १४०॥

शान्ति प्राप्ति के लिए श्वेत आसन पर, वशीकरण के लिए रक्तवर्ण के आसन पर, सम्मोहन के लिए काले आसन पर एवं धन प्राप्ति के लिए पीले आसन पर बैठकर साधना करनी चाहिए॥ १४०॥

उत्तरे शान्तिकामस्तु वश्ये पूर्वमुखो जपेत्।
दक्षिणे मारणं प्रोक्तं पश्चिमे च धनागमः॥ १४१॥

इस क्रम में उत्तर दिशा शान्ति कार्यों के लिए, पूर्व दिशा वशीकरण के लिए, मारण कर्म के लिए दक्षिण दिशा एवं धन प्राप्ति के लिए पश्चिम दिशा उपयुक्त मानी गयी है॥ १४१॥

मोहनं सर्वभूतानां बंधमोक्षकरं भवेत्।
देवराजप्रियकरं सर्वलोकवशं भवेत्॥ १४२॥

गुरुगीता की साधना सभी प्राणियों का सम्मोहन करने वाली है। इससे सभी बन्धनों से छुटकारा मिलता है। इससे देवराज की प्रीति मिलती है और सभी लोकों के प्राणी वश में होते हैं॥ १४२॥

सर्वेषां स्तम्भनकरं गुणानां च विवर्धनम्।
दुष्कर्मनाशनं चैव सुकर्मसिद्धिदं भवेत्॥ १४३॥

इससे सभी शत्रुओं एवं दुर्गुणों का स्तम्भन होता है। गुणों की अभिवृद्धि होती है। गुरुगीता की यह साधना दुष्कर्मों का नाश करके सत्कर्मों की सिद्धि देती है॥ १४३॥

असिद्धं साधयेकार्यं नवग्रहभयावहम्।
दुःस्वप्ननाशनं चैव सुस्वप्नफलदायकम्॥ १४४॥

इस साधना से असाध्यकार्य साध्य होते हैं एवं नवग्रहों की पीड़ा दूर होती है। दुःस्वप्नों का फल नष्ट होता है, सुस्वप्नों का सुफल मिलता है॥ १४४॥

सर्वशान्तिकरं नित्यं तथा वंध्यासुपुत्रदम्।
अवैधव्यंकरं स्त्रीणां सौभाग्यदायकं सदा॥ १४५॥

इस साधना से नित्य सभी प्रकार की शान्ति होती है, वन्ध्या स्त्री इस साधना के द्वारा पुत्रवती बनती है। स्त्री इस साधना के द्वारा अपने वैधव्य का निवारण करके सौभाग्य को चिरस्थायी बनाती है॥ १४५॥

आयुरारोग्य मैश्वर्यपुत्रपौत्रप्रवर्धनम्।
अकामतः स्त्री विधवा जपान्मोक्षमवाप्नुयात्॥ १४६॥

गुरुगीता के विधिपूर्वक अनुष्ठान से आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य एवं पुत्र-पौत्रों की वृद्धि होती है। विधवा स्त्री यदि निष्काम भाव से इसका पाठ करे, तो उन्हें मोक्ष मिलता है॥ १४६॥

अवैधव्यं सकामा तु लभते चान्यजन्मनि।
सर्वदुःखभयं विघ्नं नाशयेच्छापहारकम्॥ १४७॥

यदि वे सकाम भाव से पाठ करें, तो उन्हें अगले जन्म में अचल सौभाग्य की प्राप्ति होती है। गुरुगीता के पाठ से सभी दुःख, भय, विघ्न एवं शापों का नाश होता है॥ १४७॥

सर्वबाधाप्रशमनं धर्मार्थकाममोक्षदम्।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्॥ १४८॥

इसकी साधना सभी बाधाओं का शमन करके धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष देने वाली है। यहाँ तक कि साधक जो-जो भी इच्छा करता है, वे सभी इच्छाएँ इससे निश्चित ही पूरी होती है॥ १४८॥

कामिस्य कामधेनुः कल्पनाकल्पपादपः।
चिन्तामणिः चिंतितस्य सर्वमङ्गलकारकम्॥ १४९॥

यह गुरुगीता का पाठ कामना पूर्ति के लिए कामधेनु है। कल्पनाओं को साकार करने वाला कल्पतरु है। यह चिंताओं को दूर करने वाली चिंतामणि है। इससे सभी का सब तरह से मंगल होता है॥ १४९।

मोक्षहेतुर्जपेत् नित्यं मोक्षश्रियमवाप्नुयात्।
भोगकामो जपेद्यो वै तस्य कामफलप्रदम्॥ १५०॥

मोक्ष की इच्छा से जो इसका पाठ करता है, उसे मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। भोग की इच्छा से पाठ करने वाले को मनोवाँछित भोग मिलते हैं॥ १५०॥

जपेत् शाक्तश्च सौरश्च गाणपत्यश्च वैष्णवः।
शैवश्च सिद्धिदं देवि सत्यं सत्यं न संशयः॥ १५१॥

गुरुगीता का जप-पाठ—अनुष्ठान शक्ति, सूर्य, गणपति, विष्णु, शिव के उपासकों को भी सिद्धि देने वाला है। यह सत्य है, सत्य हैइसमें कोई संशय नहीं है॥ १५१॥

अथ काम्यं जपे स्थाने कथयामि वरानने।
सागरे वा सरित्तीरेऽथवा हरिहरालये॥ १५२॥

भगवान शिव माँ से कहते हैं-हे सुमुखि! अब मैं तुमसे गुरुगीता के अनुष्ठान के लिए योग्य स्थानों का वर्णन करता हूँ। इसके लिए उपयुक्त स्थान सागर, नदी का किनारा अथवा शिव या विष्णु का मंदिर है॥ १५२॥

शक्तिदेवालये गोष्ठे सर्वदेवालये शुभे।
वटे च धात्रिमूले वा मठे वृंदावने तथा॥ १५३॥

भगवती का मंदिर, गौशाला, अथवा कोई देवमंदिर, वट, आँवला वृक्ष, मठ अथवा तुलसी वन इसके लिए शुभ माने गये हैं॥ १५३॥

पवित्रे निर्मले स्थाने नित्यानुष्ठानतोऽपि वा।
निवेदनेन मौनेन जपमेतं समाचरेत्॥ १५४॥

पवित्र, निर्मल स्थान में मौन भाव से इसका जप-अनुष्ठान करना चाहिए॥ १५४॥

श्मशाने भयभूमौ तु वटमूलान्तिके तथा।
सिध्यन्ति धत्तूरे मूले चूतवृक्षस्य सन्निधौ॥ १५५॥

इस अनुष्ठान के लिए श्मशान, भयानक स्थान, बरगद, धूतर या आम्रवृक्ष के नीचे का सुपास भी श्रेष्ठ कहा गया है॥ १५५॥

गुरुपुत्रो वरं मूर्खस्तस्य सिद्ध्यन्ति नान्यथा।
शुभकर्माणि सर्वाणि दीक्षाव्रततपांसि च॥ १५६॥

गुरुपुत्र मूर्ख होने पर भी वरण के योग्य है। इससे भी कराए गए दीक्षा-तप आदि व्रत एवं अन्य शुभ कर्म सिद्ध होते हैं, वृथा नहीं होते॥ १५६॥

संसारमलनाशार्थं भवपाशनिवृत्तये।
गुरुगीताम्भसि स्नानं तत्त्वज्ञः कुरुते सदा॥ १५७॥

इस परमतत्त्व को जानने वाले ज्ञानीजन संसार रूपी कीचड़ के नाश के लिए गुरुगीता रूपी जल से सदा स्नान करते है॥ १५७॥

स एव च गुरुः साक्षात् सदा सद्ब्रह्मवित्तमः।
तस्य स्थानानि सर्वाणि पवित्राणि न संशयः॥ १५८॥

जो गुरुगीता के जल से स्नान करता है, वह सभी ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ एवं सदागुरु होता है। वह जिस किसी स्थान में निवास करता है, वह स्थान पवित्र होता है, इसमें कोई संशय नहीं है॥ १५८॥

सर्वशुद्धः पवित्रोऽसौ स्वभावाद्यत्र तिष्ठति।
तत्र देवगणाः सर्वे क्षेत्रे पीठे वसन्ति हि॥ १५९॥

सर्वशुद्ध एवं पवित्र गुरुदेव जहाँ भी स्वाभाविक रूप से निवास करते हैं, वहाँ सभी देवों का निवास होता है॥१५९॥

आसनस्थः शयानो वा गच्छंस्तिष्ठन् वदन्नपि।
अश्वारूढो गजारूढः सुप्तो वा जाग्रतोऽपि वा॥ १६०॥

शुचिमांश्च सदा ज्ञानी गुरुगीता जपेन तु।
तस्य दर्शनमात्रेण पुनर्जन्म न विद्यते॥ १६१ ॥

गुरुगीता का जप करने वाला पवित्र ज्ञानी पुरुष बैठा हुआ, सोया हुआ, जाता हुआ, खड़ा हुआ, बोलता हुआ, अश्व की पीठ पर आरूढ़, हाथी पर आरूढ़, सुप्त अथवा जाग्रत् सर्वदा विशुद्ध होता है। किसी भी अवस्था में उसका दर्शन करने से पुनर्जन्म नहीं होता॥ १६०-१६१ ॥

समुद्रे च यथा तोयं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम्।
भिन्ने कुम्भे यथाकाशः तथात्मा परमात्मनि॥ १६२ ॥

समुद्र में जिस तरह से जल, दुग्ध में दुग्ध, घृत में घृत, घड़े का आकाश घड़े के फूट जाने से बाह्याकाश में मिल जाता है, उसी तरह से आत्मा परमात्मा में मिल जाती है॥ १६२ ॥

तथैव ज्ञानी जीवात्मा परमात्मनि लीयते।
ऐक्येन रमते ज्ञानी यत्र तत्र दिवानिशम्॥ १६३ ॥

जिस प्रकार जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाती है, उसी प्रकार समान भाव को जानता हुआ ज्ञानी पुरुष दिन-रात आनन्द के सागर में गोते लगाता रहता है॥ १६३ ॥

एवंविधो महामुक्तः सर्वदा वर्त्तते बुधः।
तस्य सर्वप्रयत्नेन भावभक्तिं करोति यः॥ १६४॥

सर्वसंदेहरहितो मुक्तो भवति पार्वति।
भुक्तिमुक्तिद्वयं तस्य जिह्वाग्रे च सरस्वती॥ १६५॥

इस तरह से ज्ञानी सदा जीवन मुक्त होकर वास करता है, जो साधक प्रयत्नपूर्वक उसकी भावभक्ति करता है, वह सन्देह रहित होकर मुक्त होता है। उसे भोग एवं मोक्ष दोनों ही मिलते हैं उसकी जिह्वा पर सरस्वती निवास करती है॥ १६४-१६५॥

अनेन प्राणिनः सर्वे गुरुगीताजपेन तु।
सर्वसिद्धिं प्राप्नुवन्ति भुक्तिं मुक्तिं न संशयः॥ १६६॥

गुरुगीता के जप अनुष्ठान से सारे प्राणी सभी सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं, भोग एवं मोक्ष पाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है॥ १६६॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं धर्म्यं सांख्यं मयोदितम्।
गुरुगीतासमं नास्ति सत्यं सत्यं वरानने॥ १६७॥

भगवान् सदाशिव माता पार्वती से कहते हैं- हे वरानने! यह मेरे द्वारा प्रकाशित धर्मयुक्त ज्ञान है। यह सत्य, सत्य और पूर्ण सत्य है कि गुरुगीता के समान अन्य कुछ भी नहीं है॥ १६७॥

एको देव एकधर्म एकनिष्ठा परं तपः।
गुरोः परतरं नान्यत् नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्॥ १६८॥

एक ही देव है, एक ही धर्म है, एक ही निष्ठा और यही परम तप है कि गुरु से परे कोई भी तत्त्व नहीं है, गुरु से श्रेष्ठ कोई तत्त्व नहीं है, गुरु से अधिक कोई तत्त्व नहीं है॥ १६८॥

माता धन्या पिता धन्यो धन्यो वंशः कुलं तथा।
धन्या च वसुधा देवि गुरुभक्तिः सुदुर्लभा॥ १६९॥

हे देवि! गुरुभक्त को धारण करने वाले माता-पिता, कुल, वंश एवं धरती धन्य होते हैं, क्योंकि गुरुभक्ति अति दुर्लभ है॥ १६९॥

शरीरमिन्द्रियं प्राणाश्चार्थस्वजनबांधवाः।
माता पिता कुलं देवि! गुरुरेव न संशयः॥ १७०॥

हे देवि! शरीर-इन्द्रिय, प्राण, धन, माता-पिता, कुल, स्वजन, बान्धव सभी सद्गुरु की चेतना का ही तो विस्तार है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १७० ॥

आकल्पजन्मना कोट्या जपतपोव्रतः क्रियाः।
तत्सर्वं सफलं देवि! गुरु संतोषमात्रतः ॥ १७१ ॥

हे महादेवि! सद्गुरु के संतोष मात्र से करोड़ों जन्मों के जप-तप एवं व्रत आदि क्रियाएँ सफल हो जाती हैं ॥ १७१ ॥

विद्या तपोबलेनैव मन्दभाग्याश्च ये नराः।
गुरुसेवां न कुर्वन्ति सत्यं सत्यं वरानने ॥ १७२ ॥

ब्रह्माविष्णुमहेशाश्च देवर्षिपितृकिन्नरा।
सिद्धचारणयक्षाश्च अन्येऽपि मुनयो जना ॥ १७३ ॥

हे सुमुखि! जो अपने विद्याबल एवं तपबल के गर्व में गुरु सेवा नहीं करते, वे अभागे हैं। फिर ये स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश अथवा देवर्षि, पितर, किन्नर अथवा कोई भी क्यों न हों। यही नहीं सिद्ध चारण, यक्ष एवं मुनिजन भी गुरुसेवा से रहित होने पर हतभाग्य ही कहे जायेंगे ॥ १७२-१७३ ॥

गुरुर्भावः परं तीर्थमन्यतीर्थं निरर्थकम्।
सर्वतीर्थाश्रयं देवि पादाङ्गुष्ठे च वर्तते ॥ १७४ ॥

गुरुभाव परम तीर्थ है, इसके बिना अन्य सारे तीर्थ निरर्थक हैं। सत्य तो यह है कि सारे तीर्थ सद्गुरुदेव के पाँव के अंगूठे में आश्रय ग्रहण करते हैं ॥ १७४ ॥

जपेन जयमाप्नोति चानन्तफलमाप्नुयात्।
हीनंकर्म त्यजन्सर्वं स्थानानि चाधमानि च ॥ १७५ ॥

गुरुगीता का जप करने से मनुष्य निश्चित ही विजय लाभ प्राप्त करता है। उसे इस साधना से अनन्त फल मिलता है। इसलिए उसे सभी हीन कर्मों का त्याग करके, सभी अधम स्थानों का परित्याग करके इस श्रेष्ठ जप को करना चाहिए ॥ १७५ ॥

'जपं हीनासनं कुर्वन् हीनकर्मफलप्रदम्।
गुरुगीतां प्रयाणे वा संग्रामे रिपुसंकटे ॥ १७६ ॥
जपन् जयमवाप्नोति मरणे मुक्तिदायकम्।
सर्वकर्म च सर्वत्र गुरुपुत्रस्य सिद्ध्यति ॥ १७७ ॥

तुच्छ आसन पर गुरुगीता का जप करने से तुच्छ फल की प्राप्ति होती है। प्रस्थान के समय, युद्ध में शत्रु के

भय के समय इसके जप से विजय की प्राप्ति होती है। मरण के समय भी यह जप मुक्ति देता है। गुरु में भक्ति रखने वाले मनुष्य के सभी कार्य-सभी जगह पूर्ण होते हैं॥ १७६/१७७॥

इदं रहस्यं नो वाच्यं तवाग्रे कथितं मया।
सुगोप्यं च प्रयत्नेन मम त्वं च प्रियात्विति॥ १७८॥

भगवान् महादेव-माँ पार्वती से कहते हैं-हे देवि! तुम मेरा प्रिय करने वाली हो। इसीलिए गुरुगीता का यह रहस्यमय ज्ञान मैंने तुम्हारे सामने प्रकट किया है। इसे जिस किसी के सामने प्रकट करना ठीक नहीं है। इसे यत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिए॥ १७८॥

स्वामिमुख्यगणेशादि-विष्णवादीनां च पार्वति।
मनसापि न वक्तव्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ १७९॥

हे पार्वती! गुरुतत्त्व इतना गोपनीय है कि यह कार्तिकेय, गणेश एवं विष्णु आदि देवों को भी नहीं कहा जाना चाहिए। यह मैं तुमसे सत्य बता रहा हूँ॥ १७९॥

अतीव पक्वचित्ताय श्रद्धाभक्तियुताय च।
प्रवक्तव्यमिदं देवि ममात्माऽसि सदा प्रिये॥ १८०॥

हे देवि! जिसका चित्त पूर्णतया परिपक्व और श्रद्धाभक्ति से युक्त है, उन्हीं से इसे कहना उचित है। हे प्रिये! तुम मेरी आत्मा हो, इसी कारण मैंने यह परम गोपनीय तत्त्व तुमसे कहा है॥ १८०॥

अभक्ते वंचके धूर्ते पाखण्डे नास्तिके नरे।
मनसाऽपि न वक्तव्या गुरुगीता कदाचन॥ १८१॥

भक्ति से रहित, ठगने वाला, नीच, पाखण्डी तथा नास्तिक व्यक्ति को गुरुगीता बताने का विचार भी मन में नहीं करना चाहिए॥ १८१॥

संसार सागरसमुद्धरणैकमन्त्रं,
ब्रह्मादिदेवमुनिपूजितसिद्धमन्त्रम्।
दारिद्र्यदुःखभवरोगविनाशमन्त्रं,
वन्दे महाभयहरं गुरुराजमंत्रम्॥ १८२॥

इस प्रकार के संसार सागर से उद्धार करने वाले एक मात्र मंत्र को, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र आदि देवताओं एवं नारद आदि मुनियों के द्वारा पूजित इस सिद्ध मंत्र को, मृत्यु के महान् भय को हरण करने वाले और संसार के समस्त रोगों का हरण

करने वाले सर्वश्रेष्ठ गुरुगीता रूप इस गुरुमंत्र को मैं नमन करता हूँ॥ १८२॥

॥ ॐ जय जय श्री स्कन्दपुराणे उत्तरखण्डे ईश्वरपार्वती संवादे गुरुगीता सम्पूर्णम्॥

ॐ तत्सत् सत्याः सन्तु मम अभीष्टकामा श्रीसद्गुरु-अर्पणमस्तु।

कहकर जल छोड़ें।

॥ गायत्री जप ॥

विनियोग :-

ॐकारस्य परब्रह्म ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, तिसृणां महाव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्च्छन्दांस्यग्निवायुसूर्या देवताः तत्सवितुरिति विश्वामित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः।

कर न्यास :-

ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः।

ॐ भूः तर्जनीभ्यां नमः।

ॐ भुवः मध्यमाभ्यां नमः।

ॐ स्वः अनामिकाभ्यां नमः।

ॐ भूर्भुवः कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

ॐ भूर्भुवः स्वः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यास :-

ॐ हृदयाय नमः।

ॐ भूः शिरसे स्वाहा।

ॐ भुवः शिखायै वषट्।
ॐ स्वः कवचाय हुम्।
ॐ भूर्भुवः नेत्राभ्यां वौषट्।
ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट्।

ध्यानम् :-

ॐ आयातु वरदे देवि! त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि।
गायत्रिच्छन्दसां मातः ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते॥

मंत्र जप :-

ॐ भूर्भुवः स्व तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

हाथ जोड़कर आद्यशक्ति का ध्यान करते हुए निम्न मंत्र के साथ प्रार्थना करें।

विसर्जन प्रार्थना :-

ॐ उत्तमे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतमूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवि! यथासुखम्॥

॥ श्री सद्‌गुरुस्तुतिः ॥

जगदीश सुधीश भवेश विभो,
परमेश परात्पर पूत पितः।
प्रणतं पतितं हतबुद्धिबलं,
जनतारण तारय तापितकम्॥ १ ॥

गुणहीनसुदीनमलीनमतिं,
त्वयि पातरि दातरि चापरतिम्।
तमसा रजसावृतवृत्तिमिमं,
जनतारण तारय तापितकम्॥ २ ॥

मम जीवनमीनमिमं पतितं,
मरुघोरभुवीह निरीहमहो।
करुणाब्धिचलोर्मिजलानयनं,
जनतारण तारय तापितकम्॥ ३ ॥

भवतारण कारण कर्मततौ,
भवसिन्धुजले शिव! मग्नमतः।
करुणाञ्च समर्प्य तरिं त्वरितं,
जनतारण तारय तापितकम्॥ ४ ॥

अतिनाश्य जनुर्मम पुण्यरुचे,
दुरितौघभरैः परिपूर्णभुवः।
सुजघन्यमगण्यमपुण्यरुचिं,
जनतारण तारय तापितकम्॥ ५॥
भवकारक नारकहारक हे,
भवतारक पातकदारक हे।
हर शङ्कर किङ्करकर्मचयं,
जनतारण तारय तापितकम्॥ ६॥
तृषितश्चिरमस्मि सुधां हित
मेऽच्युत चिन्मय देहि वदान्यवर।
अतिमोहवशेन विनष्टकृतं,
जनतारण तारय तापितकम्॥ ७॥
प्रणमामि नमामि नमामि भवं,
भवजन्मकृतिप्रणिषूदनकम्।
गुणहीनमनन्तमितं शरणं,
जनतारण तारय तापितकम्॥ ८॥

भावार्थ :-

हे जगत् के स्वामी! हे सुमतियों के स्वामी! हे विश्वेश! हे सर्वव्यापिन्! हे प्रकृति आदि से अतीत! हे परम पावन! हे पिता! हे जीवों का निस्तार करने वाले! इस शरणागत, पतित और बुद्धिबल से हीन संसारसंतप्त भक्त का उद्धार कीजिये॥ १॥

जो सर्वथा गुणहीन, अत्यन्त दीन और मलीन मति है तथा अपने रक्षक और दाता आपसे पराङ्मुख है, हे जीवों का निस्तार करने वाले! इस संसार संतप्त उस तामस-राजस वृत्ति वाले भक्त का आप उद्धार कीजिये॥ २॥

हे जीवों का निस्तार करने वाले! इस भयानक मरुभूमि में पड़कर नितांत निश्चेष्ट हुए मेरे इस अति संतप्त जीवन रूप मीन का अपने करुणावारिधि की चञ्चल तरंगों का जल लाकर उद्धार कीजिये॥ ३॥

अतः हे संसार की निवृत्ति करने वाले! हे कर्मविस्तार के कारणस्वरूप! हे कल्याणमय! हे जीवों का निस्तार करने वाले! संसार समुद्र के जल में डूबकर संतप्त होते हुए इस भक्त को अपनी करुणारूप नौका समर्पण करके यहाँ से तुरन्त उद्धार कीजिये॥ ४॥

हे पुण्यरुचे! हे जीवोद्धारक! जिसकी पापराशि के भार से पृथ्वी परिपूर्ण है, ऐसे मुझ नीच के जन्म को सदा के लिए मिटाकर मुझ अत्यन्त निन्दनीय, नगण्य, पाप में रुचि रखने और संसार के दुःखों से दुःखित का उद्धार कीजिये ॥ ५ ॥

हे जगत्कर्त्ता! हे नारकीय यंत्रणाओं का अपहरण करने वाले! हे संसार का उद्धार करने वाले! हे पापराशि को विदीर्ण करने वाले! हे शिवरूप! इस दास की कर्मराशि का हरण कीजिये और हे जीवों का निस्तार करने वाले! इस संसार संतप्त भक्त का उद्धार कीजिये ॥ ६ ॥

हे अच्युत! हे चिन्मय! हे उदारचूड़ामणि! हे कल्याणस्वरूप! मैं अत्यन्त तृषित हूँ, मुझे ज्ञानरूप अमृत का पान कराइये। मैं अत्यन्त मोह के वशीभूत होकर नष्ट हो रहा हूँ। हे जीवों का उद्धार करने वाले! मुझ संसार संतप्त को पार लगाइये ॥ ७ ॥

संसार में जन्म प्राप्ति के कारणभूत कर्मों का नाश करने वाले आपको मैं बारम्बार प्रणाम और नमस्कार करता हूँ। हे जीवों का उद्धार करने वाले! आप निर्गुण और अनन्त की शरण को प्राप्त हुए इस संसार संतप्त भक्त का उद्धार कीजिये ॥ ८ ॥

पाठ समाप्ति के बाद साधक निम्न मंत्रों के साथ हाथ जोड़कर क्षमा याचना करे।

॥ क्षमा प्रार्थना ॥

अपराधसहस्राणि, क्रियन्तेऽहर्निशं मया।
दासोऽयमिति मां मत्वा, क्षमस्व परमेश्वर॥ १ ॥

आवाहनं न जानामि, न जानामि विसर्जनम्।
पूजां चैव न जानामि, क्षम्यतां परमेश्वर॥ २ ॥

मंत्रहीनं क्रियाहीनं, भक्तिहीनं सुरेश्वर।
यत्पूजितं मया देव, परिपूर्णं तदस्तु मे॥ ३ ॥

अपराधशतं कृत्वा, श्रीसद्गुरुञ्च यः स्मरेत्।
यां गतिं समवाप्नोति, न तां ब्रह्मादयः सुराः॥ ४ ॥

सापराधोऽस्मि शरणं, प्राप्तस्त्वां जगदीश्वर।
इदानीमनुकम्प्योऽहं, यथेच्छसि तथा कुरु॥ ५ ॥

अज्ञानाद्विस्मृतेर्भ्रान्त्या, यन्न्यूनमधिकं कृतम्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव, प्रसीद परमेश्वर॥ ६ ॥

ब्रह्मविद्याप्रदातर्वै, सच्चिदानन्दविग्रह!।
गृहाणार्चामिमां प्रीत्या, प्रसीद परमेश्वर॥७॥

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं, गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव, त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर॥८॥

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट

शांतिकुंज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड) 249411

फोन 01334-260602, फैक्स 260866

Email: shantikunj@awgp.org Website:www.awgp.org